RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2021-23/पृष्ठ संख्या 44/प्रकाशन तिथि 1 अगस्त 2021

बाल विज्ञान पत्रिका, अगस्त 2021

चकमक

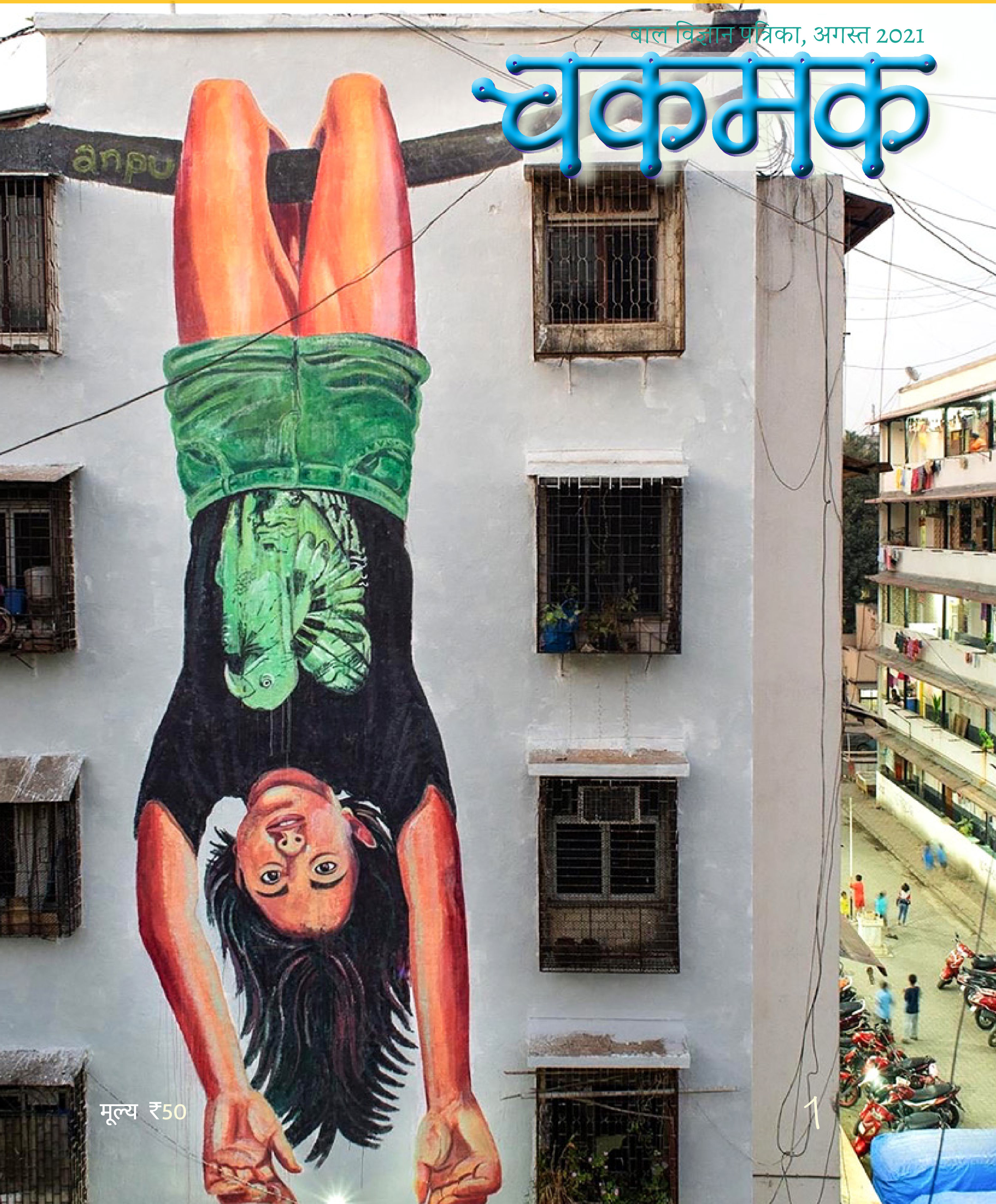

मूल्य ₹50

1

पीछे छूटी हुई चीज़ें

नरेश सक्सेना

चित्र: कनक शशि

बिजलियों को अपनी चमक दिखाने की
इतनी जल्दी मचती थी
कि अपनी आवाज़ें पीछे छोड़ आती थीं
आवाज़ें आती थीं पीछा करतीं
अपनी गायब हो चुकीं
बिजलियों को तलाशतीं

टूटते तारों की आवाज़ें सुनाई नहीं देतीं
वे इतनी दूर होते हैं
कि उनकी आवाज़ें कहीं
राह में भटककर रह जाती हैं
हम तक पहुँच ही नहीं पातीं

कभी-कभी रातों के सन्नाटे में
चौंककर उठ जाता हूँ
सोचता हुआ
कि कहीं यह सन्नाटा किसी ऐसी चीज़ के
टूटने का तो नहीं
जिसे हम हड़बड़ी में बहुत पीछे छोड़ आए हों!

अंक 419 ● अगस्त 2021

चकमक

इस बार

पीछे छूटी हुई चीज़ें – नरेश सक्सेना – 2

अपना ग्राउंड – लवलीन मिश्रा – 4

क्यों-क्यों जवाब – कड़वा पसन्द क्यों – सुशील जोशी – 9

तोड़-फोड़ की कला – इशिता देबनाथ बिस्वास – 10

शेरनी पर बोलती है एक शेरनी – रोहन चक्रवर्ती – 14

शेरनी – सिद्धार्थ चौधरी – 15

बड़ों का बचपन – नीली-सी स्कर्ट – शशि सबलोक – 16

नन्हा राजकुमार – भाग-2 – एन्त्वॉन द सैंतेक्ज़ूपेरी – 18

क्यों-क्यों – 22

तालाबन्दी में बचपन – मदद – तहरीन – 24

माथापच्ची – 27

एक, दो, तीन... – नेचर कॉन्ज़र्वेशन फाउंडेशन – 28

गणित है मज़ेदार – चन्दा, शतरंज और... – आलोका कन्हरे – 30

मेरा पन्ना – 32

तुम भी जानो – 39

चित्रपहेली – 40

तुम भी बनाओ – कनक शशि – 44

भूलभुलैया – 44

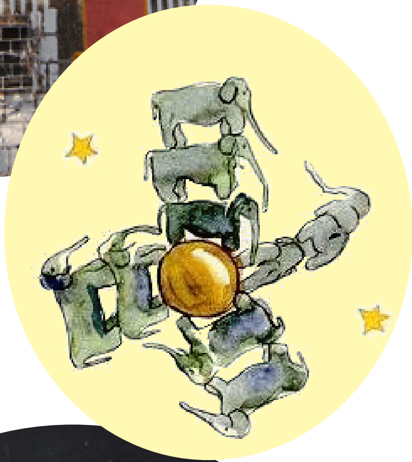

सम्पादन
विनता विश्वनाथन

सह सम्पादक
कविता तिवारी

सहायक सम्पादक
मुदित श्रीवास्तव
भाविनी पन्त

वितरण
झनक राम साहू

डिज़ाइन
कनक शशि

डिज़ाइन सहयोग
इशिता देबनाथ बिस्वास

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

सलाहकार
सी एन सुब्रह्मण्यम्
शशि सबलोक

एक प्रति : ₹ 50

सदस्यता शुल्क
(रजिस्टर्ड डाक सहित)
वार्षिक : ₹ 800
दो साल : ₹ 1450
तीन साल : ₹ 2250

आवरण चित्र: अन्पु वार्की, फोटो: सूरज काट्रा व St+Art India
ये चित्र माहिम, मुम्बई में बनाया गया है। इसका शीर्षक है 'डिज़ी'।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चेक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण:
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी
accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
फोन: +91 755 2977770 से 3 तक; ईमेल: chakmak@eklavya.in, circulation@eklavya.in
वेबसाइट: https://www.eklavya.in/magazine-activity/chakmak-magazine

अपना ग्राउंड

लवलीन मिश्रा
चित्र: शुभम लखेरा

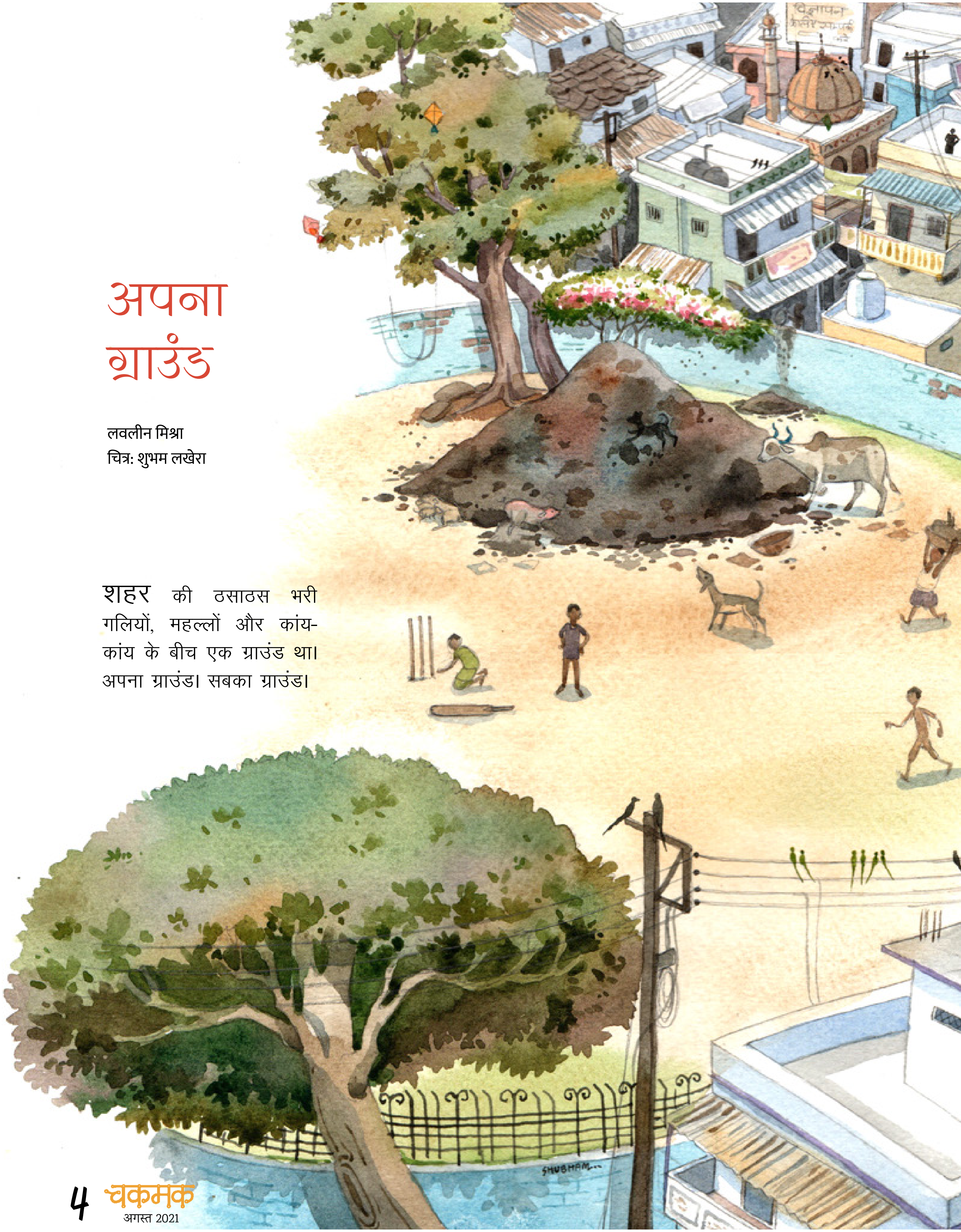

शहर की ठसाठस भरी गलियों, महल्लों और कांय-कांय के बीच एक ग्राउंड था। अपना ग्राउंड। सबका ग्राउंड।

ग्राउंड में गड्ढे थे। कई जगह पत्थर-कंकड़ भी। जहाँ ग्राउंड खतम होता, वहाँ कोने में कचरे का ढेर था। अब क्यूँकि कचरे का ट्रक हमारे महल्ले में नहीं आता था, वो ढेर पहाड़ का रूप ले चुका था। कई पुश्तों ने अपना कचरा यहाँ स्वाहा किया होगा।

कचरे के ढेर के पीछे समता नगर से झूमती-इतराती एक बोगनवेलिया की बेल दीवार को पार कर ग्राउंड में चली आई थी। उसमें गुलाबी और सफेद रंग के फूल खिलते थे। क्या नज़ारा था – कचरा और फूल।

दो पेड़ थे। एक आम का और दूसरा इमली का। बड़े भैया लोग एकदम खिलाड़ी आदमी थे। एक पत्थर में दो-तीन आम लूट लेते। और लूटकर सब मिल-बाँटकर खाते।

बारिश में जब कीचड़ से भरे ग्राउंड में मेंढक टर्राते हमारी अड्डेबाज़ी बनी रहती। कोई फुटबॉल ले आता तो पूरे फीफा वाले जोश के साथ फुटबॉल खेलते। बारिश और गीले कीचड़ में नहाते हुए। धुँधली रौशनी में कोई किसी को पहचान नहीं पाता। बॉल दिख जाए वही काफी था। शायद यही एक मौका था जब हम एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते थे।

मुद्दे की बात ये है कि ग्राउंड हमारा दूसरा घर था। वहीं दोस्त बने और कुछ अस्थायी दुश्मन भी (जो सही वक्त आने पे दोस्त बन जाते थे)। वहीं पे एक-दूसरे के राज़ साझा होते, षड्यंत्र रचे जाते, लड़कियाँ ताड़ते, जाली या फेक (जो परीक्षा के बाद पता चलता) क्वेश्चन पेपर मिलते, नए खेल सीखते, मम्मी-पापा और टीचरों की नकल उतारते, अपना दुखड़ा सुनते-सुनाते। कम शब्दों में कहूँ तो, हम वहीं पले-बढ़े।

ग्राउंड में मेरा पहला दोस्त फरीद था। उसने मुझे फुटबॉल से लड़ियाना सिखाया। कहता था, “बॉल से दोस्ती कर, डर मत।” एक बार जब मुझे खतरनाक वाला बुखार हुआ तो मैं हफ्तों ग्राउंड नहीं आ पाया। फरीद इतना परेशान हुआ कि जहाँ-तहाँ से पता करते-कराते मेरे घर पहुँच गया। उसे देख मेरा आधा बुखार गायब हो गया था। कितनी सफाई से बोला था, “नहीं आंटी, सोमेन बारिश में नहीं नहाया। वो हम सब को भीगने से मना भी किया।” माँ झट-से बोलीं, “अच्छा? भीगा तुम, बीमार सोमू हुआ!”

उस साल बहुत बारिश हुई थी। तीन बार स्कूल बन्द करने पड़े थे। फरीद ने बताया कि उसके पापा के गाँव में बाढ़ आई थी। फिर कुछ दिन बाद आकर बोला, “मेरी दादी मर गईं। घर के साथ बह गईं।” मैं सन्न रह गया। भला पानी का कहर ऐसा हो सकता है कि सोते हुए आदमी को घर समेत बहा ले जाए। हेमन्त ने अपनी स्टाइल से सांत्वना दी, “अच्छा है, गोरमेंट मुआवज़ा देगी। नया घर बनाकर देगी। पक्का घर।”

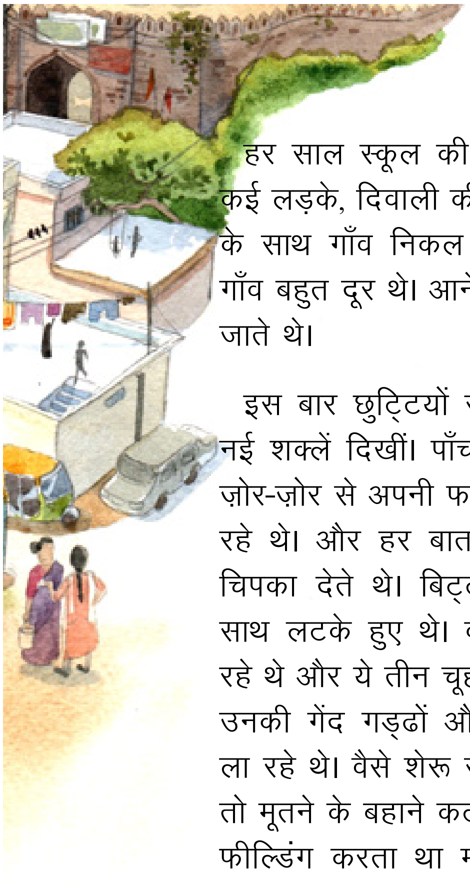

हर साल स्कूल की परीक्षा के बाद हम में से कई लड़के, दिवाली की छुट्टियों में अपने माँ-बाप के साथ गाँव निकल जाते थे। फरीद जैसों के गाँव बहुत दूर थे। आने-जाने में ही पाँच दिन लग जाते थे।

इस बार छुट्टियों से लौटे तो ग्राउंड में कुछ नई शक्लें दिखीं। पाँच-छह लम्बे-चौड़े लड़के थे। ज़ोर-ज़ोर से अपनी फटी हुई आवाज़ में बात कर रहे थे। और हर बात के अन्त में गाली ज़रूर चिपका देते थे। बिट्टू, नन्ही और शेरू उनके साथ लटके हुए थे। वो मुश्टण्डे बल्लेबाज़ी कर रहे थे और ये तीन चूहों के माफिक दौड़-दौड़कर उनकी गेंद गड्ढों और कोनों से खोद-खोदकर ला रहे थे। वैसे शेरू से फील्डिंग करने को कहो तो मूतने के बहाने कट लेता था। और नन्ही ऐसी फील्डिंग करता था मानो बल्लेबाज़ ने गेंद को अनदेखा करने के लिए उसे दो बंटा सोडा पिलाने का वादा किया हो।

मैंने देखा कि वो मुश्टण्डे खुलेआम चीटिंग कर रहे थे ताकि वो बैटिंग करते रहें। जो आउट चिल्लाता उसे वो गाली दे चुप करा देते या गेम से बाहर कर देते।

फरीद, हेमन्त, चेतन और बाकी सब खेल की बेइज़्ज़ती होते देख रहे थे। मैं जब बाकर, किशोर और मोंटू के साथ आया तो ये नज़ारा देखकर बोल पड़ा, “तुम सब क्यूँ नहीं खेल रहे? या सब आउट हो गए?” तब भी कोई नहीं बोला। तीनों के चेहरे पे बेबसी पुती हुई थी। माथे पे डर का तिलक। हमारे ग्राउंड में दादागिरी? पर इन मुश्टण्डों से पंगा नहीं ले सकते थे। हमसे काफी लम्बे थे। डोले-शोले भी थे। हाँ, क्रिकेट में जीरो थे।

उसी वक्त गेंद को हवा में आते देख मैंने लपक के कैच लिया। मुश्टण्डे 1 के चौके के सपने को मैंने चकनाचूर कर दिया था। वो तिलमिला गया और अपनी भारी-भरकम आवाज़ में गाली उगल दी। मैंने स्वीकारते हुए कहा, “थैंक यू। अब हमारी बारी?” उसने कोई जवाब नहीं दिया।

मुश्टण्डा 2 आगे बढ़कर बोला, “हमने अंकल से बात की है, हम यहीं खेलेंगे। तुम अपना अलग देख लो।”

टोनी तपाक-से बोला, “अंकल की परमिशन क्यों? ग्राउंड सबका है।”

बबलू ने उसका साथ दिया, “हम कब से यहाँ खेल रहे हैं, किसी ने कभी नहीं रोका।”

फरीद ने आग्रह किया, “हम भी अच्छा खेलते हैं। साथ खेलते हैं ना?”

मुश्टण्डा 1 बल्ले को हवा में उड़ाते हुए बोला, “नहीं! जा, जाकर अपनी झुग्गी-झोपड़ी में खेल। ये ग्राउंड यहाँ के लड़कों के लिए है।”

मुझसे रहा नहीं गया। मैं फूट पड़ा, “ये यहीं का लड़का है। और कोई कहीं भी रहे, उससे क्या? धौंस किस बात की है?”

उसके बाद जो शुरू हुआ उसका अन्त खून, चोट, चीखने-चिल्लाने और आँसुओं में हुआ। चौकीदार चाचा (हम उन्हें ‘चाचा’ कहते थे) को आकर हम सब को अलग करना पड़ा। पुलिस बुलाने की भी धमकी दी गई।

तय हुआ कि दूसरे दिन हम उन मुश्टण्डों के पहले आकर खेलना शुरू कर देंगे। तो कोई टूटी टाँग, कोई हाथ में पट्टी और कोई सूजी हुई आँख लिए पहुँच गया। घायल योद्धा बुलन्द इरादे लिए ग्राउंड पहुँचे। अब खेल से ज़्यादा सबके हक की बात थी।

चौकीदार चाचा ने हमें अन्दर जाने से रोका। “तुम सबन को भीतर आने का परमीसन नाही। कल जो तुम काण्ड किए हो ना, रपट बड़े साहब तक गई है।”

फरीद ने पूछा, "कौन बड़े साहब?" कोई जवाब नहीं मिला।

"उनका ऑर्डर रहीं, इहाँ के लड़के खेल सकत है, और कउनो नाही।"

"हम कहाँ खेलेंगे?" टोनी गरजा।

"हम का जाने?" चाचा ने मुँह फेरते हुए कहा।

मोंटू ने खदेड़ा, "चच्चा, सठिया गए हो का? हम कब से यहीं खेलत हैं।"

ये वही चाचा थे जिन्होंने बारिश में भीग जाने पर हमें कई बार गर्म चाय पिलाई थी। फरीद का घुटना फूट जाने पे हल्दी का लेप लगाया था। टोनी के साथ बैठकर उसे घर से भाग जाने से रोका था। हम सब ने साथ मिलकर दुर्गा पूजा और मेलों के बाद ग्राउंड से कूड़ा-पत्थर हटाए थे। ये ग्राउंड तो हम सब का था ना?

हम बके जा रहे थे और चाचा मौन थे। इसी बीच मुश्टण्डों का गैंग हीरो वाला स्वैग लिए ग्राउंड में दाखिल हुआ। चौकीदार चाचा ने उन्हें सलाम ठोका और अपनी टूटी कुर्सी पे जाकर बैठ गए। हम चाचा के पीछे गए और समझाने-मनाने लगे। हम दलील पे दलील दिए जा रहे थे। लेकिन सभी दलीलें उनकी बीड़ी के धुएँ के छल्लों में खोती जा रही थीं। मैंने देखा कि शेरू, नन्ही और बिट्टू के साथ बाकी बच्चे आराम से अन्दर-बाहर जा रहे थे।

अब हम रोज़ शाम ग्राउंड के बाहर मिलते थे। लगता था आज नहीं तो कल हम अन्दर जा सकेंगे। लेकिन नहीं। हमने शाम दर शाम बस यूँही ग्राउंड के बाहर बिताई। और जाते भी कहाँ? हमारे घरों के पास और कोई खुली जगह नहीं थीं जहाँ खेल सकते थे, खुलकर बोल-हँस सकते थे। चिड़ियों और पतंगों को उड़ता देख सकते थे, यारी-दोस्ती की हवा में नहा सकते थे।

कोई खुलकर पूछता नहीं लेकिन सभी के मन में ये सवाल था कि हम में, हमारे महल्ले में ऐसा क्या नहीं था जो बाकी में था। फटे हाल तो सभी के थे – कुछ के ज़्यादा, तो कुछ के कम।

मैं आते-जाते कोशिश करता रहा। मुश्टण्डों को समझाने की। लेकिन ना वो सुनना चाहते थे, ना दोस्त बनना चाहते थे। सिर्फ रौब जमाना चाहते थे।

मैंने उन बड़े साहब के बारे में भी कई बार जानना चाहा। लेकिन चाचा ने मुझे लिफ्ट नहीं दी। बोले कि अगर नाम बता दिया तो उनकी नौकरी चली जाएगी। हमें अपना ग्राउंड प्यारा था, उन्हें अपनी नौकरी।

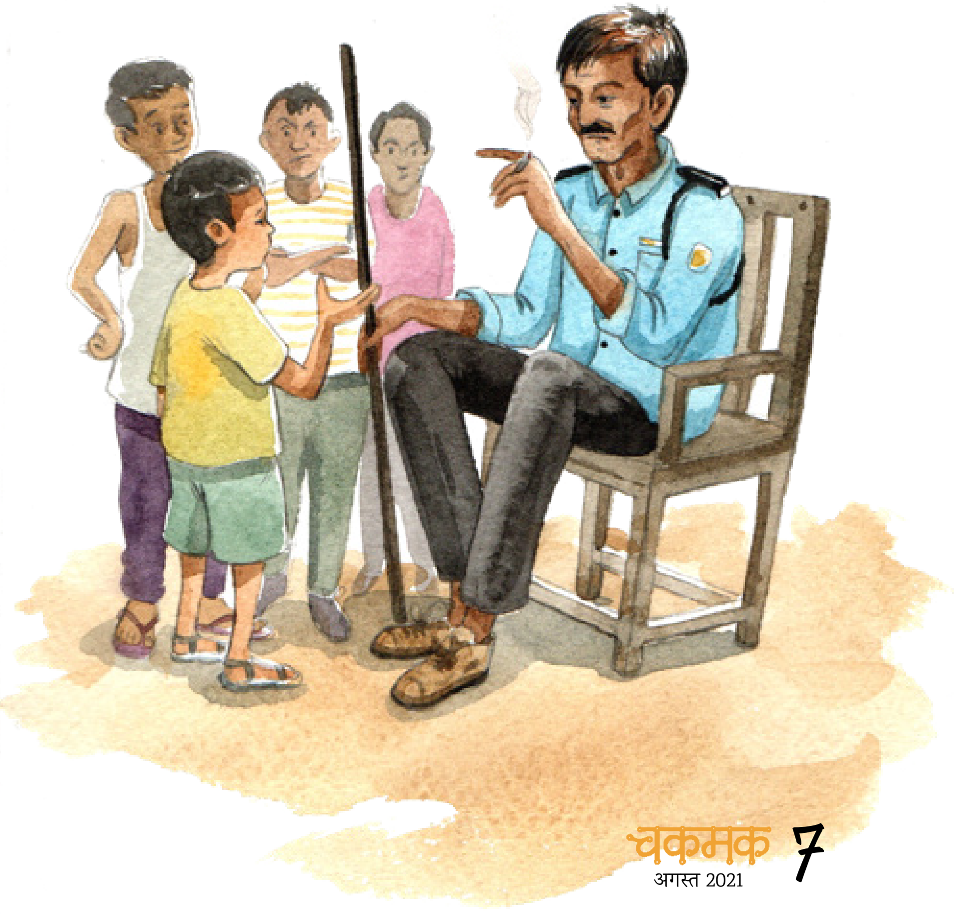

इस बीच हमने देखा कि ग्राउंड में आए दिन कोई न कोई सभा-टाइप होने लगी थी। कभी जागरण तो कभी कोई राजनीतिक पार्टी का फंक्शन या किसी लीडर का जन्मदिन मनाया जाता। वो तम्बू-कनात गाड़ते तो बम्बू की बल्लियाँ हमारी बनाई हुई पिच की ऐसी-तैसी कर देतीं।

फिर एक दिन स्कूल में सुरेश और राजन टकराए। मुश्टण्डों के साथ खेलते-खेलते वो भी उनके जैसे दिखने लगे थे।

राजन बोला, “यार, फरीद और बाकर के महल्ले का सियाप्पा है। तुझे आने देंगे। बस तू और बच्चों के आने के लिए बोलना नहीं। आई बात समझ में।”

सुरेश ने गुणगान शुरू किया, “पता है, उनके चलते ग्राउंड में झूले लगने वाले हैं! बैंच भी। अगले हफ्ते क्रिकेट मैच है!”

मैंने सोचा, “क्या रे सोमेन, तुझे खेलने को मिलेगा... जा ना!”

तभी घण्टी बजी और हम अपनी-अपनी क्लास में चले गए।

क्लास के दरवाज़े पे राजन ने मुझे रोका। “आएगा आज शाम?”

मैंने कहा, “फरीद भी।”

राजन ने सर पीटा और बोला, “तू उल्लू का पट्ठा ही रहेगा।”

मिस हिस्ट्री पढ़ाना शुरू कर चुकी थीं। हमें द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में बता रही थीं।

“हिटलर यहूदियों को जर्मनी की आर्थिक मन्दी, प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की शर्मनाक हार के लिए दोषी मानता था। उसका मानना था, यहूदी सभी तरह की बुराइयों के लिए ज़िम्मेदार थे। उसके अनुसार केवल गोरे और नॉर्डिक सूरत वाले लोगों को ही जर्मनी में रहने का अधिकार था...”

मैं सुन रहा था और अपनी कॉपी में ग्राउंड में उगती बोगनवेलिया की बेल का चित्र बना रहा था। एक ही बेल में गुलाबी और सफेद फूल खिलते थे।

कड़वा पसंन्द क्यों

जुलाई माह में हमने तुमसे पूछा था कि कुछ लोगों को कड़वा स्वाद क्यों पसन्द होता है। कई बच्चों ने अपने-अपने जवाब हमें भेजे थे। सुशील जोशी ने भी अपना जवाब हमें भेजा। उनका लिखा जवाब तुम यहाँ पढ़ सकते हो।

सुशील जोशी

कुछ सवाल ना पूछना ही अच्छा होता है। कड़वे स्वाद की पसन्द-नापसन्द का सवाल भी मुझे ऐसा ही लगा। जब मैंने देखना शुरू किया कि कड़वे स्वाद का माजरा क्या है तो मैं शंका में पड़ गया। किसी ने बताया कि जिन लोगों को कड़वा स्वाद भाता है वे चालू किस्म के लोग होते हैं।

अरे बाप रे! मुझे तो काफी पसन्द है और काली चाय भी अच्छी लगती है (मजबूरी में नहीं)। और तो और करेले की सब्ज़ी भी मुझे पसन्द है। तो पक्का हो गया कि मैं ज़रूर गड़बड़ नमूना हूँ। परन्तु फिर मैंने सोचा कि ऐसा नहीं हो सकता – आखिर ऐसे कितने ही लोग हैं जिन्हें चॉकलेट पसन्द है, और करेले भी।

कड़वा यानी कि खतरा

फिर एक खबर मिली जिससे थोड़ा अच्छा लगा। कड़वा स्वाद आम तौर पर विषैली (या हानिकारक) चीज़ों से जुड़ा होता है। इसलिए मनुष्यों ने ही नहीं लगभग सारे जन्तुओं ने कड़वे के प्रति नफरत पैदा की है। ये कड़वे पदार्थ अक्सर पेड़-पौधों द्वारा बनाए जाते हैं ताकि चरने वाले जन्तु उनसे दूर रहें।

कड़वा, क्या कड़वा?

फिर सवाल उठ गया कि कुछ लोगों को कड़वा स्वाद क्यों अच्छा लगता है। वैज्ञानिकों को भी यह सवाल बहुत दिलचस्प लगा। तो हो गई खोजबीन शुरू। सबसे पहले तो यह देखा गया कि हमारी जीभ पर पाँच स्वाद पहचानने के लिए ग्रन्थियाँ होती हैं – मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा और उमामी। पर कड़वा स्वाद पहचानने वाली ग्रन्थियों की संख्या बाकी सारे स्वादों से ज़्यादा हैं। मतलब कड़वे स्वाद को हमारा शरीर बहुत महत्व देता है। और इतना महत्व देता है कि अलग-अलग किस्म के कड़वे स्वाद को भी हम अलग-अलग पहचान सकते हैं। और तो और, मैंने कहीं पढ़ा कि स्वाद की ग्रन्थियाँ ही ऐसी हैं जो सिर्फ जीभ पर नहीं शरीर के अन्दर कई अंगों में पाई जाती हैं।

दूसरी बात यह पता लगी कि कड़वे स्वाद को भाँपने के मामले में लोगों के बीच बहुत फर्क होता है। कुछ प्रयोग किए गए जिनमें अलग-अलग व्यक्तियों की कड़वे स्वाद को भाँपने की क्षमता का पता लगाया गया। इसके लिए करना यह पड़ता है कि किसी कड़वे पदार्थ के अलग-अलग सान्द्रता के घोल बनाए जाएँ और फिर यह पता किया जाए कि कम से कम कितनी मात्रा घुली होने पर किसी व्यक्ति को कड़वाहट का पता चल जाता है। इन प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने लोगों के तीन समूह बनाए हैं – अति-संवेदी, संवेदी और असंवेदी। तो पता चलता है कि कई लोगों को कड़वे स्वाद का पता ही नहीं चलता – तो ऐसे में तो पसन्द-नापसन्द का सवाल ही पैदा नहीं होता।

इतना पता चल जाने के बाद वैज्ञानिकों की जिज्ञासा और बढ़ गई। वे जानना चाहते थे कि क्यों कुछ लोग अति-संवेदी, कुछ लोग संवेदी और कुछ लोग असंवेदी होते हैं। पता नहीं तुम में से कितने लोगों ने जीन का नाम सुना है। न सुना हो तो कोई बात नहीं, मैं संक्षेप में बता देता हूँ। जीन हमारी कोशिकाओं में वह व्यवस्था होती है जो यह तय करती है कि कोई प्रोटीन बनेगा या नहीं। प्रोटीन

ही फिर आगे का सारा कामकाज चलाते हैं। सारी कोशिकाओं में हरेक जीन की दो-दो प्रतियाँ होती हैं। वैज्ञानिकों ने कड़वा स्वाद पता करने वाले एक नहीं कई प्रोटीन की पहचान कर ली है। और उन्हें बनाने वाले जीन भी खोज निकाले हैं। पता चला है कि अति-संवेदी लोगों में ये दोनों प्रतियाँ बढ़िया काम करती हैं, जबकि असंवेदी लोगों में दोनों में कुछ ऐसी गड़बड़ी होती है कि वे काम नहीं कर पातीं।

कड़वा यानी कि अच्छा!

लेकिन कड़वा स्वाद पसन्द करने का एक और बड़ा कारण ये बताते हैं कि मनुष्यों ने धीरे-धीरे सीखा कि कुछ कड़वी चीज़ों में पोषक पदार्थ पाए जाते हैं। उन्होंने यह देखा (और सीखा) कि ऐसे कुछ पदार्थ सेहत के लिए अच्छे होते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो मूड अच्छा कर देते हैं। तो मनुष्यों ने अपने-अपने ढंग से इन्हें खाने के तरीके निकाले। तो पसन्द-नापसन्द का सवाल संस्कृति से भी जुड़ा है।

मैंने तुम लोगों के जवाब पढ़ते हुए देखा कि अलग-अलग ढंग से, अपने-अपने शब्दों में तुम लोगों ने ये सारी बातें कह दी हैं। किसी ने मजबूरी का नाम लिया, तो किसी ने कहा कि हमारी सेहत के लिए अच्छी होती हैं। किसी ने कहा कि माँ करेले की सब्ज़ी बेहतरीन बनाती हैं, तो कुछ ने कहा कि इनसे चुस्त-दुरुस्त बने रहते हैं।

तोड़-फोड़ की कला

इशिता देबनाथ बिस्वास
अनुवाद: लोकेश मालती प्रकाश

कागज़ के आविष्कार से बहुत पहले हमारे पुरखे गुफाओं की दीवारों पर अपनी कहानियाँ लिखते थे। भीमबेटका की गुफाओं में बने चिह्नों को देखकर हम सोच में डूब जाते हैं कि क्या इनको बनाने के पीछे भी खुद को अभिव्यक्त करने की वही तीव्र लालसा रही होगी जिससे प्रेरित हो बच्चे दीवारों पर रेखाएँ बनाते हैं? और क्या तब भी आज की ही तरह दीवार पर चित्र बनाने के लिए बच्चों को डाँट पड़ती थी? फिर यह सवाल भी उठता है कि कला क्या है और शैतानी क्या है? इसे समझने के लिए एक नज़र डालते हैं सार्वजनिक जगहों पर अभिव्यक्ति के किस्म-किस्म के रूपों पर और इसके इतिहास पर।

ग्राफिटी

शायद तुम 'ग्राफिटी' (graffiti) शब्द से परिचित होगे। सार्वजनिक जगहों की दीवारों पर या गलियों में बिना किसी की अनुमति के बनाए गए चित्रों या नारों/सन्देशों को ग्राफिटी कहते हैं। ये निजी अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं, हालाँकि ज़्यादातर ये राजनीतिक सन्देश ही होते हैं।

आम तौर पर इनको विध्वंसात्मक माना जाता है और अमरीका, यूरोप व दुनिया के दूसरे हिस्सों में ये गैर-कानूनी हैं। बीजिंग जैसे कुछ शहरों में ग्राफिटी के ज़रिए निजी अभिव्यक्तियों को ज़ाहिर करने की छूट तो है, लेकिन किसी तरह के राजनीतिक या धार्मिक प्रचार पर रोक है। वहीं दूसरी तरफ मेलबर्न जैसे शहर में ग्राफिटी के लिए खास गलियाँ चिह्नित की गई हैं। भारत में वैसे तो ग्राफिटी के खिलाफ कोई खास कानून नहीं है। पर चूँकि सार्वजनिक सम्पत्ति को गन्दा करना गैर-कानूनी है, इसलिए ग्राफिटी को सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना माना जा सकता है। यानी यहाँ यह साफ नहीं है कि इसे किस स्थिति में अपराध माना जाएगा।

ग्राफिटी शब्द का तकनीकी अर्थ है किसी सतह पर 'खुरचकर' कोई निशान बनाना। ये प्राचीन काल से प्रचलित है। उस ज़माने में अभिलेख और चित्र वगैरह धार्मिक स्थलों या इमारतों और यहाँ तक कि पत्थरों पर उकेरे जाते थे। कई विलुप्त भाषाओं के चिह्न तो ऐसे अभिलेखों में ही बचे हुए हैं। ग्राफिटी के प्रति नकारात्मक नज़रिया तो बहुत बाद में पनपा।

इस तरह से अपनी बात को अभिव्यक्त करने की कला समय के साथ ग्राफिटी से विकसित होते हुए 'स्ट्रीट आर्ट' के रूप में पहचानी जाने लगी। हालाँकि ग्राफिटी स्ट्रीट आर्ट का ही एक रूप है, लेकिन हर तरह का स्ट्रीट आर्ट ग्राफिटी नहीं होता। इस मामले में कुछ भी तयशुदा नहीं है।

स्ट्रीट आर्ट

स्ट्रीट आर्ट सार्वजनिक जगहों पर की जाने वाली कला है और ग्राफिटी की तुलना में इसकी सामाजिक स्वीकार्यता आम तौर पर ज़्यादा है। इसके बावजूद भी कई बार स्ट्रीट कलाकार कानूनी परेशानियों में फँस जाते हैं। दिलचस्प बात यह है कि स्ट्रीट आर्ट महज़ दीवार या दूसरी सतहों पर निशान बनाना नहीं होता है। असल में, सार्वजनिक जगहों पर किसी तरह का स्थापत्य, इंस्टॉलेशन, परफॉरमेंस या किसी तरह की अभिव्यक्ति को स्ट्रीट आर्ट कह सकते हैं। यहाँ तक कि सड़क पर कूदते-फाँदते चलने या बड़बड़ाने को भी स्ट्रीट आर्ट कहा जा सकता है! (कई बार यह कहना मुश्किल होता है कि कोई हरकत वाकई स्ट्रीट आर्ट है या महज़ तोड़-फोड़ या बदमाशी)।

1. कान्दिवली, मुम्बई में लेखक द्वारा बनाया गया म्यूरल
सृष्टि इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट, डिज़ाइन एंड टेक्नोलॉजी का प्रोजेक्ट

2. द चर्च ऑफ द होली सेपुल्कह, जेरुसलम में प्राचीन क्रूसडर ग्राफिटी

भीमबेटका की गुफाओं में बने चिह्नों को देखकर हम सोच में डूब जाते हैं कि क्या इनको बनाने के पीछे भी खुद को अभिव्यक्त करने की वही तीव्र लालसा रही होगी जिससे प्रेरित हो बच्चे दीवारों पर रेखाएँ बनाते हैं। और क्या तब भी आज की ही तरह दीवार पर चित्र बनाने के लिए बच्चों को डाँट पड़ती थी? फिर यह सवाल भी उठता है कि कला क्या है और शैतानी क्या है?

ग्राफिटी का राजनीतिक इस्तेमाल

ग्राफिटी को ज़्यादातर राजनीतिक प्रतिरोध की कार्यवाहियों से जोड़कर देखा गया है और स्ट्रीट आर्ट के दायरों में इसकी स्वीकार्यता व बारीकी धीरे-धीरे बढ़ी है।

भारत में ग्राफिटी और स्ट्रीट आर्ट का राजनीतिक इस्तेमाल लम्बे समय से होता आया है। हाल के वर्षों में जिन इलाकों में राजनीतिक संकट रहा है, मसलन कश्मीर, वहाँ पर भी इनका खूब इस्तेमाल हुआ है। पश्चिम बंगाल में भी 'चुनावी ग्राफिटी' का चलन लम्बे समय से रहा है।

विश्वविद्यालयों के कैम्पस भी विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति की आज़ादी के हक में ज़ोरदार ग्राफिटी बनाने के गढ़ रहे हैं। ये ग्राफिटी सत्ता में बैठे लोगों को चुनौती देते हैं और कई बार तो शासन-प्रशासन इनसे इतना चिढ़ जाता है कि ऐसी अभिव्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही भी करता है।

आधुनिक स्ट्रीट आर्ट कलाकार

आधुनिक दौर में एक और चलन रहा है स्ट्रीट कलाकारों द्वारा किसी काल्पनिक नाम के पीछे अपनी असली पहचान छिपा लेने का। शायद वे ऐसा कानूनी अड़चनों या सज़ा वगैरह से बचने के लिए करते हैं। एक समय तो ये कई उभरते स्ट्रीट कलाकारों के बीच एक फैशन ही बन गया और आज भी जारी है।

आज के दौर में ऐसे कलाकारों में सबसे लोकप्रिय नाम एक बर्तानी ग्राफिटी कलाकार बैंक्सी का है जिनकी प्रसिद्धि 2006-07 में अपने चरम पर थी। आज तक उस कलाकार की असली पहचान का पता नहीं चल पाया है। ये वर्जित माने जाने वाले विषयों पर अपने अनूठे व्यंग्यात्मक स्टेंसिल चित्रों के लिए जाने जाते हैं।

कुछ ऐसा ही काम भारत के एक कलाकार कर रहे हैं जिनको guesswho (बूझो कौन) के नाम से जाना जाता है।

यह सब पढ़ने के बाद किसी गली या पार्क में या किसी सार्वजनिक इमारत पर बने ऐसे चित्रों को तुम शायद पहले से ज़्यादा गौर-से देखने की कोशिश करो। अगर ऐसा है तो

3. दुनिया में किसी अन्य जगह से एक और...

4. पश्चिम बंगाल में ग्राफिटी फोटो: roadsandkingdoms.com

यह देखो कि किन जगहों पर किस तरह के चित्र ज़्यादा दिखते हैं। सार्वजनिक शौचालयों में किस तरह की चीज़ें लिखी होती हैं, सरकारी इमारतों की दीवारों पर कैसे चित्र बने रहते हैं। अण्डरपास या स्कूलों की दीवारों पर कैसी चीज़ें देखने को मिलती हैं। तुम्हें शायद ऐसी दीवारें भी देखने को मिलें जहाँ पोस्टर चिपकाना मना हो या तरह-तरह के भगवानों की तस्वीरों वाले टाइल देखने को भी मिल सकते हैं। और अगली बार जब तुम्हें गलियों में राजनीतिक नारे सुनाई दें या किसी सपेरे की बीन के सुर तो शायद तुम सोचो कि ये कला है या परेशानी का सबब!

5. guesswho द्वारा बनाई गई एक स्टेन्सिल में म्यूरल (फोटो: सानन्द करुणाकरन)

6. श्रीनगर की गलियों में एक बन्दगोभी को सैर कराते कश्मीरी कलाकार (फोटो: Kashmiri Cabbage Walker)

7. लुक द वियर्ड, ऐगमौर स्टेशन, चैन्नई

शेरनी पर बोलती है एक शेरनी

रोहन चक्रवर्ती

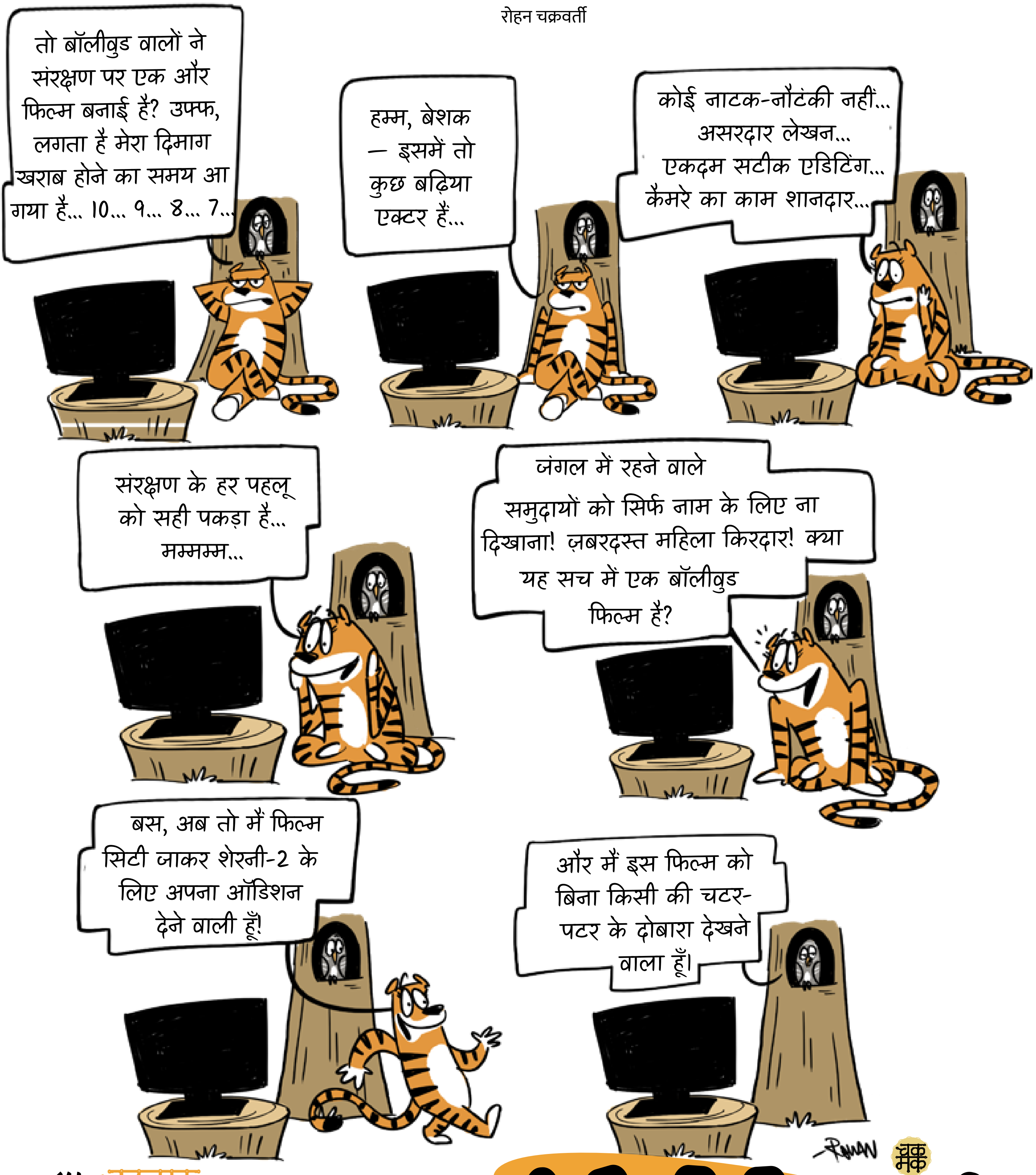

शेरनी

सिद्धार्थ चौधरी, सातवीं, दिल्ली पब्लिक स्कूल, भोपाल, मध्य प्रदेश

यह फिल्म मध्य प्रदेश के अद्भुत जंगलों और इलाकों में फिल्माई गई है। फिल्म एक महिला वन अधिकारी और स्थानीय लोगों व ट्रैकर्स की उनकी टीम द्वारा एक परेशान शेरनी को पकड़ने के लिए किए गए प्रयासों के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी प्रकृति और मनुष्य के बीच के संघर्ष को भी सामने रखती है। साथ ही महिला होने के कारण एक वन अधिकारी के खिलाफ जारी लड़ाई को भी दर्शाती है।

मुझे ऐसा लगा कि सभी उम्र के लोगों को ध्यान में रखकर बनाई गई एक फिल्म के लिहाज़ से यह काफी धीमी है। मुझे ये भी लगा कि गम्भीर मुद्दों के बावजूद इसमें कुछ हास्य जोड़कर इसे और भी दिलचस्प बनाया जा सकता था।

नकारात्मक बातों को छोड़ दें तो यह फिल्म वास्तव में एक ही समय में कई विषयों को प्रभावी ढंग से रखती है। राजनीति में भ्रष्टाचार को इतनी कुशलता से दिखाया गया है कि वह किसी के लिए भी अपमानजनक नहीं लगता। फिल्म में कई मर्तबा यह दिखाया गया है कि वन अधिकारी को गम्भीरता से नहीं लिया जाता, महज़ इसलिए कि वो एक महिला है। पर मुख्य मुद्दा मनुष्य व जानवरों के बीच संघर्ष का ही है। मुझे यह बात अच्छी लगी कि एक विवादास्पद मुद्दा होने के बावजूद इसे खुलकर दर्शाया गया है। हाथ में पकड़ने वाले कैमरे से जबर्दस्त काम किया गया है और ऐसा लगता है जैसे कि आप जंगल में ही हों। यह एक बड़ा कारण है जो आपको कहानी से जोड़े रखता है।

मुझे फिल्म वाकई में अच्छी लगी पर मैं ऐसे किसी व्यक्ति को इस फिल्म को देखने की राय नहीं दूँगा जो सिर्फ मनोरंजन के लिए फिल्म देखता हो – कई मौकों पर यह एक एक्शन और रोमांच से भरी फिल्म की बजाय डॉक्युमेंट्री जैसी ज़्यादा लगती है। ऐसी फिल्म को देखने में शायद कुछ ही बच्चों की दिलचस्पी हो। और यह कोई अच्छी बात नहीं है क्योंकि मुख्य रूप से हमारे यानी युवा पीढ़ी के बीच ही इन मुद्दों पर जागरूकता फैलाने की ज़रूरत है। फिल्म का अन्त कुछ खास नहीं है, लेकिन फिर भी अच्छा लगता है। कुल मिलाकर एक बार देखने के लिए फिल्म बेहतरीन है, लेकिन शायद सभी लोगों के लिए नहीं।

फिल्म: *शेरनी*
कलाकार: विद्या बालन, शरत सक्सेना, विजय राज, इला अरुण, बृजेन्द्र काला, नीरज काबी और मुकुल चड्डा
निर्देशक: अमित मसूरकर
लेखक: आस्था टीकू, यशस्वी मिश्रा और अमित मसूरकर
कैमरामैन: राकेश हरिदास
एडिटिंग: दीपिका कारला

जून 2021, में ऑनलाइन रिलीज़ हुई हिन्दी फिल्म *शेरनी* काफी चर्चित रही। कार्टूनिस्ट व फिल्म प्रेमी रोहन चक्रवर्ती द्वारा लिखी इस फिल्म की समीक्षा हम यहाँ दे रहे हैं। इसके साथ ही इस फिल्म के बारे में सातवीं कक्षा के सिद्धार्थ चौधरी की राय भी तुम्हें यहाँ पढ़ने को मिलेगी।

तुम्हें अगर यह फिल्म देखने का मौका मिले तो तुम भी बताना कि तुम्हें ये कैसी लगी।

नीली-सी स्कर्ट

शशि सबलोक

चित्र: कनक शशि

मुझे याद है वो नीली-सफेद चौखाने वाली स्कर्ट थी। घुटने से नीचे। कम घेरे वाली। वो स्कर्ट कैसे घर आई, यह याद नहीं। सिली-सिलाई तो नहीं ली होगी। कपड़ा खरीदा होगा या घर पर रखे कपड़े से बनी होगी। माँ ने ही सिली होगी। हमारे घर लड़कियों के सारे कपड़े माँ ही सिलती थीं। यही रिवाज़ था। इतने सालों बाद उस स्कर्ट की दो बातें याद रहीं। एक, उसे पाने की मेरी अदम्य इच्छा। और दूसरी, उसे पहनकर बाहर जाना। एक तीसरी भी याद रही। आज इतने साल बाद उस नीली स्कर्ट पर लिखने की वजह शायद वही बनी।

मैं अपनी सहेलियों को स्कर्ट पहना देखती। झालर वाली, रंग-बिरंगी, जीन्स के कपड़े वाली। बहुत सुन्दर लगतीं। मन होता मैं भी पहनूँ। पर अब मम्मी सिलती नहीं थीं। स्कूल की स्कर्ट तो सिल देतीं। पर घर में पहनने के लिए सलवार-कमीज़ सिलतीं। या मैक्सी। यह मेरे आठवीं में आते-आते तक होने लगा था। पर यह ऐसे चुपचाप-से हुआ कि मुझे भी एहसास न हुआ। घर में किसी ने किसी बात को मना नहीं किया। मैंने अगर कभी कहा कि इस फूल वाले कपड़े की स्कर्ट अच्छी लगेगी, तो मम्मी कहतीं, “अरे, नहीं इसकी तो मैक्सी तुझ पर ज़्यादा फबेगी।” और मैं यकीन कर लेती थी।

तो ऐसे में नीले-सफेद चौकड़ी वाली स्कर्ट कैसे बनी, यह हैरानी की बात है। अब बन गई तो मैं खुश हो गई। कमरा बन्द कर उसे पहनती। छोटे-से आईने को ऊपर से नीचे घुमाकर देखती। वो इतना छोटा था कि उससे शक्ल भी पूरी नहीं दिखती थी। पर टुकड़ा-टुकड़ा ही सही।

पर अब सवाल यह कि पहनूँ कब। भाई देखेगा तो ज़रूर झिड़केगा। पता नहीं मुझे यह खयाल क्यों आया। पिछले दो-तीन साल से तो स्कर्ट पहनी ही नहीं थी। मन में उसका बहुत डर था। पर पहनकर बाहर जाने का मन भी बहुत था। तो सोचा जब वो घर पर नहीं होगा और यह पता होगा कि वो कहाँ जा रहा है, तब पहनूँगी। लम्बे इन्तज़ार के बाद एक दिन मौका हाथ लगा। मैंने फटाफट वह स्कर्ट पहनी और घर से बाहर निकली। मैं सरकारी घरों के बीच से गुज़रती हुई खुद को आज भी देख पाती हूँ। भाई लोगों के घरों के बीच से गुज़रने की उम्मीद कम ही होती है। डर था, पर खुशी बहुत थी।

बहुत मन था कि सहेलियों के घर जाऊँ। पर हड़बड़ी थी कि भाई के घर पहुँचने से पहले पहुँचना है। खैर, घर आ गई। तसल्ली हुई कि वो नहीं आया था। फटाफट कपड़े बदले। थोड़ी देर बाद वो आया। मेरी कनपटी गर्म हो गई। धुकधुकी मच गई। पर वो नॉर्मल रहा। खाना वाना खाया। कोई किताब उठाई और लेटकर पढ़ने लगा।

स्कर्ट पहनने की असली खुशी मुझे अब महसूस हुई थी। अचानक उसने करवट बदली और बोला, “तू आज कहीं बाहर गई थी...?”

“मैं... मैं... हाँ गई थी। क्यों?”

“मैंने तुझे देखा था। वो नीली-सी स्कर्ट पहनी थी ना।” और वो देर तक मुझे देखता रहा।

बस इतनी ही बात हुई थी।

उस स्कर्ट का फिर क्या हुआ, मुझे याद नहीं।

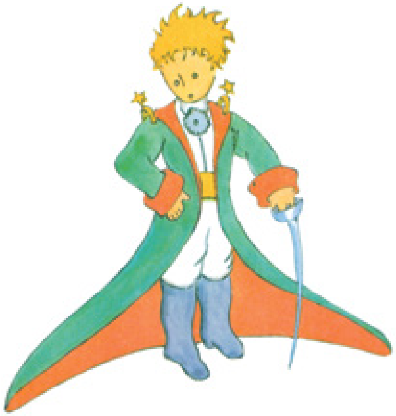

भाग - 2

नन्हा राजकुमार

एन्त्वॉन द सैंतेक्ज़ूपेरी
अनुवाद : लालबहादुर वर्मा

पिछले अंक में तुमने पढ़ा
लेखक को बचपन में बड़ों ने चित्र बनाने से हतोत्साहित किया तो वह पायलट बन बैठा। अपनी एक यात्रा के दौरान उसे रेगिस्तान में जहाज़ उतारना पड़ा। वहाँ उसकी भेंट एक नन्हे राजकुमार से हुई। राजकुमार ने उससे भेड़ का चित्र बनाने के लिए कहा और फिर एक-दूसरे से परिचय का सिलसिला शुरू हुआ। राजकुमार ने बताया कि वह एक छोटे-से ग्रह का निवासी है।
अब आगे...

इससे मुझे बहुत आश्चर्य नहीं हुआ। मैं जानता था कि पृथ्वी, बृहस्पति, मंगल, शनि जैसे बड़े-बड़े ग्रहों के अलावा सैकड़ों ऐसे छोटे, बेनाम ग्रह हैं जिन्हें दूरबीन से भी देखने में कठिनाई होती है। जब कोई वैज्ञानिक किसी एक ग्रह की खोज करता है तो वह उसकी पहचान के लिए एक संख्या चुन लेता है, जैसे नक्षत्र 32611।

मेरे इस विश्वास के कई कारण हैं कि जिस नक्षत्र से वह आया था, उसका नाम B612 होगा। इस नक्षत्र को केवल एक बार 1901 में एक तुर्क वैज्ञानिक ने अपनी दूरबीन से देखा था।

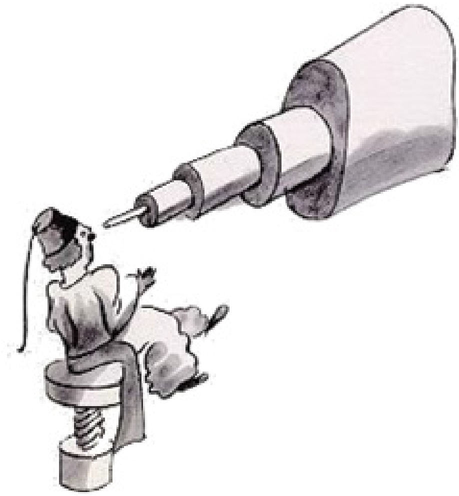

उसने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अपनी खोज का भव्य प्रदर्शन किया था। पर उसकी पोशाक देखकर उस पर किसी ने विश्वास नहीं किया। वयस्क लोग ऐसे ही होते हैं।

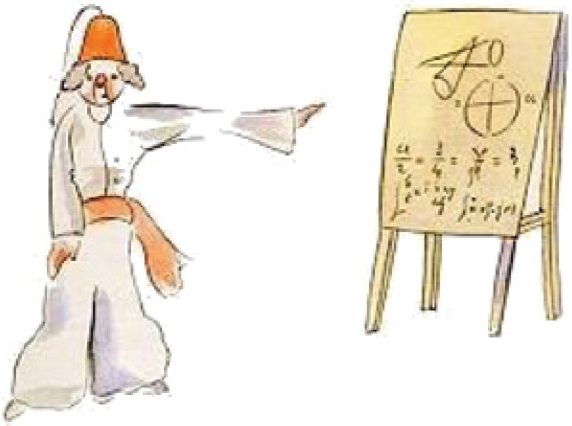

B612 के नक्षत्र अच्छे रहे होंगे क्योंकि तुर्की के एक तानाशाह ने, शायद इसी घटना के कारण, कानून बना दिया कि जो योरोपीय ढंग के कपड़े नहीं पहनेगा उसे मौत की सज़ा मिलेगी। उस वैज्ञानिक ने 1920 में फिर प्रदर्शन किया। इस बार उसने अपने को सूट-बूट से सजा रखा था और सबने उसकी बात मान ली थी।

वयस्क लोगों के कारण ही मुझे उस नक्षत्र और उसकी संख्या के बारे में इतने विस्तार में बताना पड़ा। बड़े लोगों का संख्याओं में बड़ा विश्वास होता है। उनसे आप किसी नए दोस्त के बारे में बातें करें तो वे कभी कोई सार्थक प्रश्न नहीं पूछेंगे। वे कभी नहीं पूछेंगे, "उसकी आवाज़ कैसी है? कौन-से खेल खेलता है? तितलियाँ इकट्ठा करता है?" पूछेंगे, "क्या उम्र है? उसके कितने भाई हैं? उसका वज़न कितना है? उसके पिता कितनी तनख्वाह पाते हैं?" यही सब जानने में विश्वास होता है उनका। उनसे कहो, "मैंने गुलाबी ईंटों का एक मकान देखा है जिसकी खिड़कियों पर जैरेनियम के फूल लगे हैं, छत पर कबूतर गुटुर-गूं करते हैं!" तो वे ऐसे घर की कल्पना भी नहीं कर पाएँगे। उनसे कहना चाहिए, "मैंने एक लाख की कीमत वाला मकान देखा है।" झट बोलेंगे, "कितना सुन्दर!"

इसी तरह अगर उनसे कहो, "नन्हा राजकुमार बहुत आकर्षक था, हँसता था, एक भेड़ चाहता था," और यह उसके होने के लिए – उसके अस्तित्व को साबित करने के लिए काफी है – क्योंकि कोई होगा तभी तो भेड़ माँगेगा? तो ये लोग कन्धा उचकाकर तुम्हें बच्चा समझ लेंगे। लेकिन यदि यह कहा जाए कि जिस ग्रह से वह आया था उसका नाम B612 है तो वह मान जाएँगे। और फिर कोई सवाल नहीं पूछेंगे। ऐसे होते हैं ये लोग, इनसे ऐसी ही उम्मीद रखनी चाहिए। बच्चों को बड़े लोगों के प्रति बड़े धैर्य से काम लेना पड़ता है।

ठीक ही तो है कि हम लोग, जिन्हें जीवन की समझदारी है, संख्याओं की परवाह नहीं करते। मुझे यह किस्सा परियों की कहानी की तरह शुरू करना चाहिए था। मुझे कहना चाहिए था, "एक था नन्हा राजकुमार जो एक ऐसे ग्रह में रहता था जो उससे थोड़ा ही बड़ा था। उसे एक दोस्त चाहिए था..." जो लोग जीवन को समझते हैं उन्हें यह ज़्यादा सच लगता।

मैं नहीं चाहता कोई मेरी किताब को हँसी में उड़ा दे। मुझे इन यादों को संजोने में कितना दुख हो रहा है। मेरे दोस्त को अपनी भेड़ लेकर गए छह साल हो चुके हैं और लिख इसलिए रहा हूँ कि उसे भूलूँ ना। दोस्त को भूलना दुखदायी होता है और सबके दोस्त नहीं होते। मैं भी वयस्कों की तरह हो सकता था – उन्हीं की तरह संख्याप्रिय। इसीलिए मैंने रंगीन पेन्सिलें खरीदी थीं। इस उम्र में चित्रकारी फिर से शुरू करना कठिन होता है। विशेषकर जब किसी ने छह साल की उम्र में बस अजगर के चित्र बनाए हों। फिर भी मैं यथासम्भव मिलती-जुलती तस्वीरें बनाने की कोशिश करूँगा। वैसे मुझे विश्वास नहीं कि मुझे पूर्ण सफलता मिल पाएगी। राजकुमार से सम्बन्धित चित्र बनाता हूँ तो एक ठीक बनता है, तो दूसरा बिगड़ जाता है। माप गलत हो जाता है। एक जगह राजकुमार छोटा बन जाता है तो दूसरी जगह बड़ा। उसकी

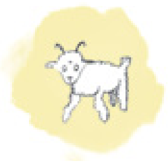

लेकिन बीज तो दिखाई नहीं पड़ते। वे तब तक पृथ्वी के रहस्यमय गर्भ में पड़े सोते रहते हैं जब तक वह रहस्य किसी बीज के माध्यम से प्रस्फुटित नहीं होता। तब वह बीज अंगड़ाई लेता, हलके-हलके सूरज को निहारता एक नन्हे, कोमल और मनमोहक अंकुर के रूप में प्रकट होता है।

पोशाक के रंगों के बारे में भी हिचकता हूँ। इस तरह अच्छे-बुरे चित्र बनाता, टटोलता-सा आगे बढ़ता रहता हूँ। मुझे लगता है कि विवरण सम्बन्धी गलतियाँ हो ही जाएँगी क्योंकि मेरा दोस्त कभी पूरी बात नहीं बताता था। शायद वह मुझे अपने ही जैसा अक्लमन्द समझता था। लेकिन क्या करूँ मुझे उसकी तरह बक्से के अन्दर भेड़ नहीं दिखाई देती। शायद मैं वयस्क की तरह हो गया हूँ – निश्चित ही बड़ा हो रहा हूँ।

हर दिन मुझे कुछ न कुछ पता चलता – कभी ग्रह, कभी वहाँ से प्रस्थान, कभी यात्राओं के बारे में। यह सब धीरे-धीरे अनायास हुआ। इसी तरह राजकुमार से मुलाकात के तीसरे दिन मुझे ‘बाओबाब’ नामक पेड़ के लगातार बढ़ने, फैलने और उससे उत्पन्न खतरे के बारे में पता चला – और यह भी भेड़ की ही वजह से क्योंकि उसने मुझसे अचानक इस तरह पूछा जैसे उसे कोई बड़ी शंका हो।

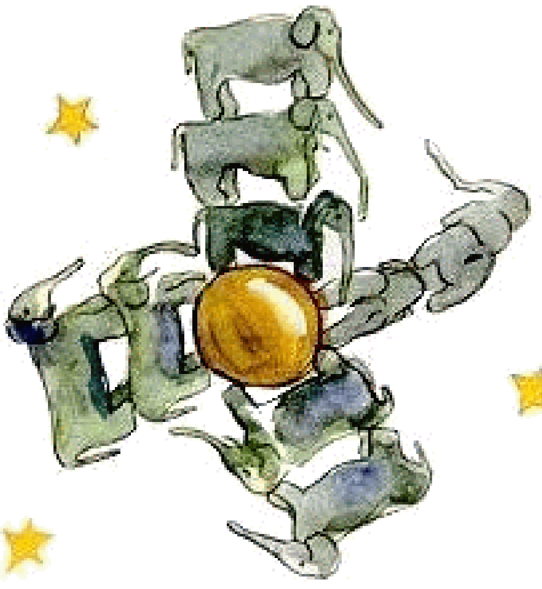

“यह सच है ना कि भेड़ झाड़ियाँ भी खाती हैं।”

“हाँ, खाती तो हैं।”

“चलो, अच्छा हुआ।”

मैं समझा नहीं कि भेड़ के झाड़ी खाने में क्या खास बात है। लेकिन तभी नन्हे राजकुमार ने कहा, “तब तो वह बाओबाब के पेड़ भी खाती होगी।”

मैंने उसे बताया कि बाओबाब झाड़ की तरह नहीं होते। वे तो गिरजाघरों जैसे ऊँचे और विशाल होते हैं और अगर वह हाथियों का झुण्ड भी लेकर आ जाए तब भी वे केवल एक पेड़ को भी पूरी तरह खाकर खतम नहीं कर सकते।

हाथियों के झुण्ड की बात सुनकर हँसी आ गई। उसने कहा, “बड़े होने से पहले तो बाओबाब छोटे होते होंगे।”

“बिलकुल ठीक। लेकिन तू क्यों चाहता है कि तेरी भेड़ छोटे बाओबाब खाएँ!”

उसने उत्तर दिया, “वाह! इतना भी नहीं समझते?” मुझे इस बात को समझने में काफी अक्ल लगानी पड़ी।

वास्तव में नन्हे राजकुमार के ग्रह पर सारे ग्रहों की तरह अच्छे और बुरे दोनों तरह के पौधे थे। अच्छे पौधों के अच्छे और बुरे पौधों के बुरे बीज भी होते थे। लेकिन बीज तो दिखाई नहीं पड़ते। वे तब तक पृथ्वी के रहस्यमय गर्भ में पड़े सोते रहते हैं जब तक वह रहस्य किसी बीज के माध्यम से प्रस्फुटित नहीं होता। तब वह बीज अँगड़ाई लेता, हलके-हलके सूरज को

निहारता एक नन्हे, कोमल और मनमोहक अंकुर के रूप में प्रकट होता है। यदि अंकुर मूली या गुलाब का हुआ तो उसे पनपने के लिए छोड़ा जा सकता है। लेकिन यदि वह किसी बुरे पौधे का हुआ तो जैसे ही पता चले उस उखाड़ फेंकना चाहिए। और नन्हे राजकुमार के ग्रह पर कुछ बहुत ही खतरनाक किस्म के बीज पाए जाते थे... जैसे बाओबाब के बीज। वहाँ की धरती उनसे आक्रान्त थी। यदि बाओबाब के बारे में उसके बड़ा हो जाने के बाद पता चले, तो फिर उससे कोई छुटकारा नहीं। वह चारों ओर फैल-पसरकर छा जाता है। उसकी जड़ें हर तरफ फैल जाती हैं। यदि ग्रह छोटा हुआ और बाओबाब बहुत-से तो वह फट पड़ेगा।

"यह तो नियम-अनुशासन की बात है।" नन्हे राजकुमार ने बाद में मुझे बताया, "सुबह नित्यक्रम से निवृत होते ही पौधों की देखभाल करनी चाहिए। गुलाब और बाओबाब के पौधे करीब-करीब एक जैसे होते हैं। इसीलिए जैसे ही बाओबाब पहचाने जा सकें उन्हें उखाड़ फेंकना चाहिए। काम उलझन वाला सही, पर होता आसान है।"

एक दिन उसने मुझे राय दी कि मैं मेहनत करके एक सुन्दर चित्र बनाऊँ ताकि इस धरती के बच्चे उसे अच्छी तरह पहचान लें। उसने कहा, "अगर उन्होंने कभी यात्रा की तो इस चित्र से उन्हें सहायता मिलेगी। कभी-कभी, कुछ दिनों बाद अपना काम फिर शुरू करने में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन जहाँ तक बाओबाब का सम्बन्ध है उन्हें नष्ट करने का काम टालने में बस खतरे ही खतरे हैं। मैं एक ग्रह के बारे में जानता हूँ जहाँ एक आलसी रहता था। उसमें तीन झाड़ों को वैसे छोड़ दिया था। और... और।"

नन्हे राजकुमार के सुझावों के आधार पर मैंने उस ग्रह का एक चित्र बनाया। वैसे मैं उपदेश

देना पसन्द नहीं करता, मगर बाओबाब से खतरों के बारे में लोगों को इतना कम मालूम है और किसी जगह जहाँ ऐसे पेड़ हों, भटक जाने वाले के लिए इतने खतरे हों तो मैं एक बार संकोच को त्याग सकता हूँ। "बच्चो! बाओबाब से बचना।" मैंने इतनी मेहनत करके यह चित्र बनाया क्योंकि मेरी ही तरह मेरे दोस्त बहुत दिनों से एक खतरा, बिना उसे जाने, टालते रहे हैं और मैं उन्हें चेतावनी देना चाहता हूँ। मैंने यह मेहनत बेकार नहीं की। कोई सोच सकता है इस पूरी पुस्तक में और कोई चित्र बाओबाब की तरह भड़कीला क्यों नहीं है। उत्तर साधारण है, मैंने हर बार कोशिश की मगर सफलता नहीं मिली। पर जब मैंने बाओबाब का चित्र बनाया तो बराबर सोच रहा था कि उसका बनना कितना ज़रूरी था। शायद इसलिए यह चित्र अच्छा बन पड़ा।

अगले अंक में जारी...

क्यों क्यों

क्यों-क्यों में इस बार का हमारा सवाल था—

अगर तुम अपना नाम बदलकर कुछ और रखना चाहो तो क्या रखोगे, और क्यों?

कई बच्चों ने हमें दिलचस्प जवाब भेजे हैं। इनमें से कुछ तुम यहाँ पढ़ सकते हो। तुम्हारा मन करे तो तुम भी हमें अपने जवाब लिख भेजना।

अगली बार के लिए सवाल है—

इस अंक में तुमने ग्राफिटी पर एक लेख (तोड़-फोड़ की कला, पेज नम्बर 10) पढ़ा होगा। अगर तुम्हें कहीं ग्राफिटी बनाने का मौका मिलता तो तुम क्या लिखते या उकेरते, और क्यों?

अपने जवाब तुम हमें लिखकर या चित्र/कॉमिक बनाकर भेज सकते हो।

जवाब तुम हमें chakmak@eklavya.in पर ईमेल कर सकते हो या फिर 9753011077 पर व्हॉट्सऐप भी कर सकते हो। चाहो तो डाक से भी भेज सकते हो। हमारा पता है:

चकमक

एकलव्य फाउंडेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, फॉर्चून कस्तूरी के पास, भोपाल - 462026, मध्य प्रदेश

मेरा नाम मानस है। मैं अपना नाम बदलकर 'वायु' रखना चाहता हूँ। ये नाम बहुत ही कूल है। और डैशिंग भी है। तो ये नाम मुझे पसन्द है।

मानस जादव, आठवीं, उज्जैन, मध्य प्रदेश

मेरा नाम लावण्या है। वैसे तो मेरा नाम बहुत प्यारा है। पर जब भी मैं किसी का नाम जैसे जलेबी, इमरती, गुलाबो आदि सुनती हूँ तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। मुझे गोलगप्पे खाना बहुत पसन्द है। और सभी मुझे गोलगप्पी कहते हैं क्योंकि मेरे गाल गोल-गोल है। अगर मुझे नाम बदलने का मौका मिले तो मैं 'गोलगप्पी' रखूँगी।

लावण्या कंसल, तीसरी, सेंट पॉल स्कूल, दिल्ली

मैं अपना नाम 'शान्ति' रख लेती। हाँ, थोड़ा ओल्ड स्कूल साउण्ड करता है और कुछ लोग चिढ़ाते भी। पर क्या फर्क पड़ता है। नाम तो प्यारा है ना। मेरा नाम पुकारते ही पुकारने वालों को शान्ति मिलती। जब भी कोई मुझे पुकारता वो मुस्करा देता। और जब मैं कभी भी परेशान रहती तो खुद को यह कहकर मुस्करा लेती, "शान्ति शान्त हो जाओ।" कितना अच्छा रहता ना।

निशा गुप्ता, किलकारी बिहार बाल भवन, पटना, बिहार

मैं अपना नाम 'कोरोना' रखना चाहूँगा। क्योंकि अभी सभी शहरों और पूरे भारत में यह नाम मशहूर है। और हर आदमी इस नाम को सुनकर डरता है।

छोटू परमार, दसवीं, देवास, मध्य प्रदेश

मुझे अपना नाम 'रजनी' रखना है। क्योंकि जब मैं रजनी नाम सुनती हूँ तो मुझे रात की रानी याद आ जाती है। और मेरे मन में खुशहाली की चमक आ जाती है।

मुस्कान, सातवीं, मंज़िल संस्था, दिल्ली

मेरा नाम हुदा है। मेरा नाम मेरी बुआ ने रखा था, जो हमें भी पसन्द है। अम्मा को भी पसन्द है। पर अम्मा कहती हैं कि वो अपनी बेटी का नाम अपनी पसन्द से रखना चाहती थीं। मेरी अम्मा मेरा नाम फातिमा रखना चाहती थीं। अगर नाम बदलना हुआ तो हम अपना नाम दोनों मिलाकर 'हुदा फातिमा' रखेंगे।

हुदा, तीसरी, अपना तालीम घर, फ़ैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

मेरे स्कूल में मैं और मेरी दोस्त गार्गी साथ में पढ़ते हैं। मैम को अगर मुझे बुलाना होता है तो वो गार्गी को बुलाती हैं। और अगर गार्गी को बुलाना होता है तो मुझे बुलाती हैं। ऐसा कई बार हुआ है। एक बार मैंने एक प्रतियोगिता में भाग लिया। और मैं उसमें प्रथम आई। फिर जब इनाम घोषित करने का दिन आया तो उस दिन गार्गी नहीं आई। और मैम ने गार्गी का नाम लिया तो सर ने कहा गौरी का नाम लीजिए। इसलिए मैं अपना नाम बदलना चाहती हूँ।

गौरी, पाँचवीं, प्राथमिक विद्यालय धुसाह - प्रथम, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

मैं अपना नाम बदलकर 'कामचोर' रखूँगी क्योंकि मैं कोई काम नहीं करती। अगर कोई मुझे काम करने को बोलता है तो मैं कोई ना कोई बहाना बनाकर टाल देती हूँ।

पूजा, चौथी, प्रोत्साहन इंडिया फाउंडेशन, दिल्ली

मैं अपना नाम 'आविष्कारी' रखती क्योंकि मुझे आविष्कार करना बहुत पसन्द है।

अनन्या आनन्द, पाँचवीं, केन्द्रीय विद्यालय, जयपुर, राजस्थान

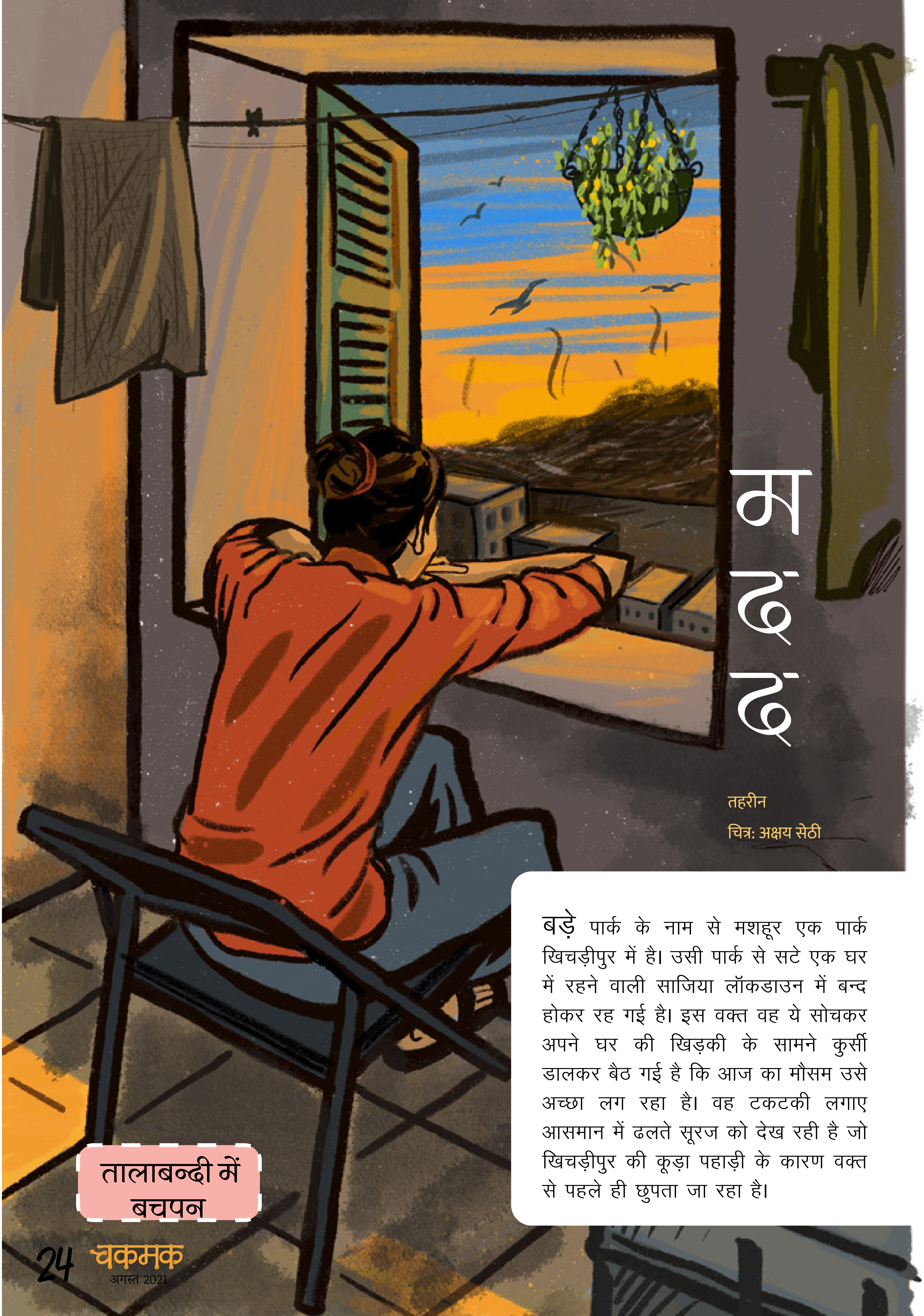

मढंढं

तहरीन

चित्र: अक्षय सेठी

बड़े पार्क के नाम से मशहूर एक पार्क खिचड़ीपुर में है। उसी पार्क से सटे एक घर में रहने वाली साजिया लॉकडाउन में बन्द होकर रह गई है। इस वक्त वह ये सोचकर अपने घर की खिड़की के सामने कुर्सी डालकर बैठ गई है कि आज का मौसम उसे अच्छा लग रहा है। वह टकटकी लगाए आसमान में ढलते सूरज को देख रही है जो खिचड़ीपुर की कूड़ा पहाड़ी के कारण वक्त से पहले ही छुपता जा रहा है।

तालाबन्दी में बचपन

तभी साजिया ने देखा कि दुल्लू और मानसी अपने घर लौटे। दोनों के ही पैर मिट्टी से सने हुए थे। चेहरे पर मिट्टी लगे होने के कारण उनका चेहरा भी बदरंग हो रहा था। वे दोनों कपड़े झाड़ते हुए घर में घुसे और जीतू से बोले, “पापा, भूख लग रही है। खाना दे दो!” यह सुन दुबले और लम्बे जीतू ने धीमी आवाज़ में कहा, “अभी खाना नहीं बना है। जब बन जाएगा तब बुला लूँगा। अभी पार्क जाओ! वहाँ खेल आओ। कहीं दूर मत जाना और मास्क लगाए रखना। लॉकडाउन चल रहा है।” दुल्लू ने तब कहा, “खाना नहीं बना है तो पाँच रुपए दे देना...!” “नहीं है।” कहते हुए जीतू ने फिर से उन्हें बाहर जाने को कहा। दुल्लू ज़िद करने लगा। “पापा दे दो ना! पाँच रुपए।” जीतू के पास पैसे तो थे नहीं। और वे अपनी ज़िद पर अड़े रहे, “नहीं है, कहा ना!” दुल्लू की ज़िद के आगे साजिया का भी दिल पिघल गया। पर जीतू ने उन्हें पैसे देने से मना कर दिया तो मना ही कर दिया।

दुल्लू ने हार मान ली और गुस्से में मानसी भी उसके पीछे चुपचाप चल दी। उन दोनों के जाने के बाद किचन से खड़खड़ाहट की आवाज़ आने लगी। ईंटों से बने घर में हर एक घर की हरकत का पता दूसरे घर को चल जाता है। इसी कारण दूर बैठी साजिया आवाज़ को अच्छे-से सुन पा रही थी। जीतू खुद को ही बोल रहे थे कि कुछ भी नहीं है घर में, जो बच्चों को बनाकर खिला सकूँ। थोड़े-से चावल थे, वो भी खतम हो गए हैं। अब क्या बनाऊँ, बच्चे भूखे हैं। इस वक्त किसी से माँगना भी तो ठीक नहीं है। कोरोना चल रहा है और लॉकडाउन भी लगा है।

तभी जीतू फोन लिए हुए घर से निकले। और फोन की स्क्रीन को देखते हुए गली के चक्कर लगाने लगे। वे पैसों के सम्बन्ध में बात करने के लिए शायद किसी को कॉल कर रहे थे। वे कुछ-कुछ देर पर फोन कान से लगा रहे थे। और काफी टेंशन में थे। कॉल न लगने पर बड़बड़ाने लग पड़ते थे। साजिया का सारा ध्यान उन्हीं पर था। वह उधर ही कान किए हुए उनकी बड़बड़ाहट को समझने की कोशिश कर रही थी। उनकी बड़बड़ाहट कभी तेज़ हो जाती तो कभी धीमी। वे बहुत देर तक इसी तरह परेशान आत्मा की तरह इधर-उधर भटकते रहे। इस बीच साजिया यही सोचती रही कि आखिर वे कॉल किसे और क्यों कर रहे हैं।

तभी “हाँ, हैलो” की आवाज़ ने फिर से उसका ध्यान उस ओर खींचा। जीतू एक साँस में बोल पड़े, “मुझे मेरी दिहाड़ी के पैसे दे दो! घर में ज़रा-सा भी राशन नहीं बचा है। सब खतम हो गया। यहाँ तक कि घर में दाल-चावल भी नहीं है। बच्चे भूखे घूम रहे हैं। तुम मुझे पैसे दो तो दाल-चावल लाऊँ और खाना बनाऊँ। तुम तो जानते ही हो घर में और कोई कमाने वाला नहीं है। जो भी कमाता हूँ, मैं ही कमाता हूँ। लॉकडाउन की वजह से काम छूट गया है, वरना यह नौबत ही नहीं आने देता। वैसे भी बच्चों की फिक्र में काम भी नहीं कर पाता हूँ। बाहर जाकर कमाऊँ या घर में इन्हें सम्भालूँ। आखिर किसके भरोसे पर इन्हें छोड़कर जाऊँ।” उधर से आवाज़ आई कि तुम्हारी आवाज़ नहीं आ रही। जीतू ने कहा, “मुझे आ रही है। दिहाड़ी के जो पैसे बनते हैं वो दे दो, कह रहा हूँ।” उधर से फोन कट गया। वे गुस्से में बोले, “लो, उसने फोन ही काट दिया।”

जीतू घर लौटे तो देखा दुल्लू, मानसी चले आ रहे हैं। उन्हें भूख तो लग ही रही होगी। आते ही दोनों ने एक साथ कहा, “पापा, खाना दे दो!’ ना चाहते हुए भी जीतू को फिर यही बोलना पड़ा कि खाना अभी नहीं बना है। जब बन जाएगा तो बुला लूँगा। जाओ पार्क में अभी और खेलो। यह सुन दुल्लु ने फिर से पाँच रुपए की माँग की। “नहीं है,” कहकर वे और उदास हो गए। दोनों भाई-बहन घर में गए और पानी भरकर गिलास ले आए। जीतू ने उन्हें पानी पीते देखा तो कहा, “ज़्यादा पानी मत पी। पेट खाली है, पिएगा तो पेट में दर्द होने

लगेगा।" "नहीं होगा," कहकर वो पूरा गिलास पानी पी गया और "पेट भर गया," कहकर पार्क चला गया।

यह सब देखना साजिया के लिए मुश्किल हो रहा था। वह वहाँ से उठी और उसने अपनी अम्मी से कहा, "अम्मी, लाओ मैं आपको खाना बनवाने में हेल्प करती हूँ।" उसकी अम्मी किचन में रोटी बेल रही थीं। वह रोटी बनाने लगी। रोटी बनाते-बनाते उसने बगल वाले घर में जो भी देखा अम्मी को बताने लगी।

उसकी अम्मी रेशमा कहने लगीं कि ममता जब ज़िन्दा थी तो दोनों बच्चे कितने अच्छे लगते थे, साफ-सुथरे रहते थे। दोनों बाहर कम ही निकलते थे। शाम को पार्क में कुछ देर खेलने आते तो दिख जाते थे। उसको मरे एक साल हो चुका। तब से उन दोनों की हालत यही है।

साजिया ने भी अपनी बातें शुरू कर दीं और कहने लगी कि हाँ! मैं तो उनके घर भी गई हुई हूँ। साजिया ने यह बात खतम करते हुए कहा कि अभी चाचा किसी से पैसे माँग रहे थे। कह रहे थे घर में खाने के लिए कुछ नहीं है। दुल्लु और मानसी दो बार घर आकर पार्क लौट चुके हैं। दो बार से "नहीं बना" कहकर वापस भेज देते हैं। उन्होंने किसी को कॉल कर अपनी दिहाड़ी भी माँगी थी। पर उस तरफ से यह कहकर फोन काट दिया गया कि आवाज़ नहीं आ रही है।

"अम्मी, क्या थोड़ी-सी सब्ज़ी और रोटी उन्हें दे आऊँ?" साजिया ने पूछा। अम्मी ने "हाँ" कहते हुए हामी भर दी। साजिया ने खुशी-से एक कटोरी में आलू की सब्ज़ी ली और रोटी प्लेट में रख पहुँच गई उन्हें देने। उन्हें देते हुए साजिया ने कहा, "अम्मी ने कहा है चखकर बताना, कैसा बना है।"

तहरीन, गर्वमेंट गर्ल्स सीनियर सैकेंडरी स्कूल, खिचड़ीपुर, दिल्ली में बारहवीं की छात्रा हैं। यह अंकुर की नियमित रियाज़कर्ता हैं। उन्हें घूमने के साथ-साथ घूमी हुई जगहों को पन्नों पर उतारने में बहुत ही मज़ा आता है।

माथापच्ची

1\. इस चित्र में कितने त्रिभुज हैं?

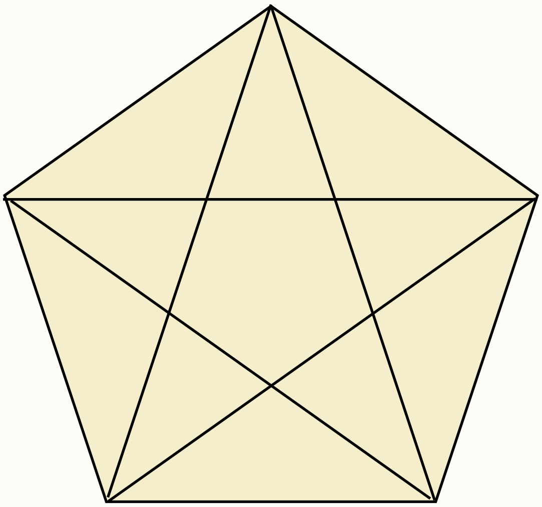

2\. इनमें से कौन-सा गोला आकार में बड़ा है – सफेद या काला?

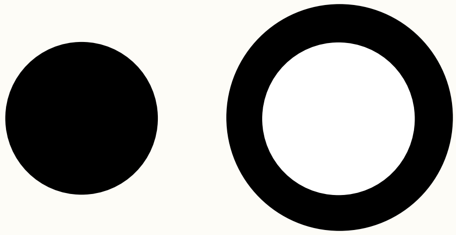

3\. दी गई संख्याओं में से सिर्फ तीन संख्याओं को जोड़कर तुम्हें 30 उत्तर लाना है। कैसे करोगे? चाहो तो तुम संख्या को दोहरा भी सकते हो।

1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 और 15।

4\.

यहाँ कुछ नदियों के नाम छुपे हुए हैं। देखो तो, तुम कितने ढूँढ़ पाते हो। तुम इन्हें आड़े-खड़े में ढूँढ़ सकते हो।

ब्र	को	चि	ना	ब	चं	गं	म	क्षि
ह	सी	सो	सिं	धु	ब	ड	घ	प्रा
म	हा	न	दी	अ	ल	क	नं	दा
पु	स	र्म	बे	त	वा	व्या	दा	धा
त्र	त	दा	गो	म	ती	स	य	घ
ती	लु	कृ	दा	मो	द	र	मु	रा
स	ज	प्या	व	ता	ल	यू	ना	गा
ता	का	वे	री	ट	रा	म	गं	गा
सा	ब	र	म	ती	वी	झे	ल	म

(यह सवाल खुशी, विश्वास स्कूल, गुरुग्राम, हरयाणा ने भेजा है।)

5\.

नीचे एक सन्देश कोडवर्ड में लिखा गया है। दिए गए क्लू के आधार पर छुपे हुए सन्देश को बताओ।

सन्देश:

1a3b 1b 6d59 47c8c 10

क्लू:

क	ज	ल	ख	त
1	2	3	4	5
भ	ज	न	र	है
6	7	8	9	10
इ	ऐ	आ	ई	ओ
a	b	c	d	e

पेज 38 पर जारी...

एक, दो, ती...न...

यूनाईटेड किंग्डम में 2015 में विश्व घोंघा दौड़ में जॉर्ज नाम का एक घोंघा जीता। जॉर्ज ने 33 सेंटीमीटर (लगभग एक फुट रूलर की दूरी) लम्बी इस दौड़ को 2 मिनट और 45 सैकेण्ड में पूरा किया।

घोंघे बहुत ही धीमे-धीमे चलने के लिए जाने जाते हैं। उनके इतने धीमे चलने का कारण शायद यह है कि उनके पास एक ही पैर है, वो भी बिना हड्डी का। और तो और इस पैर में मांसपेशी भी एक ही है जिस पर घोंघा सरकता है।

घोंघे विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे कि ज़मीनी घोंघे, ताज़े पानी में रहने वाले घोंघे और समुद्री घोंघे। ज़मीनी घोंघे पानी में जीवित नहीं रह सकते। इसी तरह पानी में रहने वाले घोंघे भी ज़मीन पर ज़िन्दा नहीं रह पाते हैं। समुद्री घोंघों में से कुछ प्रकार के घोंघे किनारों पर रहते हैं, और कुछ गहरे पानी में समुद्र तल पर रहते हैं।

तुमने शायद समुद्र के किनारे या किसी बगीचे में घोंघों के खाली खोल देखे होंगे। ये खाली खोल कभी घोंघों के घर रहे होंगे। कई बार दूसरे जीव भी इन खोलों का इस्तेमाल करते हैं। एक किस्म की 'मिस्त्री मक्खी' (मेसन बी) ज़मीनी घोंघों के खाली खोलों में अपना घोंसला बनाती है। समुद्र किनारे पाए जाने वाले हर्मिट केकड़ों को घोंघों के खाली खोलों में रहना अच्छा लगता है। गहरे समुद्र में पाई जाने वाली कुछ मछलियाँ और ऑक्टोपस भी घोंघों के खाली खोलों का इस्तेमाल अपने घरों के लिए करते हैं।

मिलिए विशेषज्ञ से

अरविन्द मध्यास्था, ताज़े पानी में रहने वाले और ज़मीनी घोंघों के विशेषज्ञ हैं। वे दस सालों से भी ज़्यादा समय से घोंघों का अध्ययन कर रहे हैं। आओ, उनसे पूछते हैं...

अरविन्द, घोंघों को अपना खोल मिलता कहाँ से है?

घोंघे अपना खोल खुद ही बनाते हैं। इसके लिए कैल्शियम उन्हें मिट्टी से मिलता है। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं, वे अपने खोल के बाहरी कोरों पर और कैल्शियम जोड़कर उसे बड़ा करते जाते हैं। इससे उनके रहने के लिए और अधिक जगह बन जाती है। खोल का मुँह यानी कि खुला हुआ सिरा उसका सबसे ताज़ा हिस्सा होता है।

क्या घोंघे अपना खोल कभी छोड़ते हैं?

ज़िन्दा रहने तक तो नहीं। खोल उनके नरम और स्पंज की तरह लचीले शरीर से जुड़ा होता है और उनका बचाव करता है। खतरे का आभास होने पर या आराम करने के लिए वे अपने खोल में घुस जाते हैं। जब तापमान एक निश्चित सीमा से कम या ज़्यादा होता है तो कई घोंघे खोल के अन्दर जाकर खोल के मुँह को चिपचिपे पदार्थ से बन्द कर देते हैं। और ज़मीन पर या दीवारों की दरारों या छेदों में या पेड़ के तनों में या पत्तियों के कचरे में रहकर मौसम के वापिस अनुकूल होने का इन्तज़ार करते हैं।

अगर तुम घोंघों के बारे में अरविन्द से कुछ और जानना चाहते हो तो chakmak@eklavya.in पर लिखो।

फील्ड डायरी के लिए

- ज़मीनी घोंघे ज़्यादातर रात में या एकदम सुबह-सुबह सक्रिय होते हैं। तुम इन्हें नमी वाली जगहों, तालाबों या पानी के किसी स्रोत के किनारे देख सकते हो। तुम दिन में भी घोंघों को ढूँढ़ सकते हो लेकिन शायद वो आसानी-से ना मिलें क्योंकि बहुत सम्भव है कि वे पत्तियों के नीचे, दीवारों पर या ज़मीन पर आराम कर रहे हों।

  घोंघे अपने शरीर से बलगम जैसा एक चिपचिपा पदार्थ (स्लाइम) निकालते हैं। इसकी चिकनाहट की बदौलत घोंघे आगे आसानी-से आगे बढ़ पाते हैं। इसलिए अगर वो सक्रिय होंगे तो इस चिपचिपे पदार्थ का पीछा करते हुए तुम उन तक पहुँच सकते हो।

- जब तुम्हें घोंघा मिल जाए तो उसका आकार अपनी डायरी में नोट कर लो। तुम इसे इस तरह लिख सकते हो कि वह पाँच रुपए के सिक्के से बड़ा है या छोटा? उसकी आकृति और रंगों के बारे में भी लिख लो। अपनी डायरी में उसका चित्र बनाने की कोशिश करो। हो सके तो उतना ही बड़ा बनाना, जितना वह वाकई में है।

- कुछ मिनटों के लिए घोंघे को देखते रहो। अगर वह आगे बढ़ता है तो यह देखने की कोशिश करो कि कैसे वह अपने पैर को किसी लहर की तरह आगे बढ़ाता है। क्या तुम उसके सिर पर चार स्पर्शक (टेंटकल्स) और सबसे लम्बे स्पशर्क पर आँखें देख पाए? क्या तुम घोंघे द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई स्लाइम से बनी एक लाइन देख सकते हो?

अगर तुम्हें बिना खोल का कोई घोंघा मिले तो समझ लेना कि तुमने एक 'स्लग' को देखा है। स्लग, घोंघे का करीबी रिश्तेदार है।

अगर तुम्हें कोई जीवित घोंघा ना मिले तो उसके खाली खोल को अपने बगीचे और तालाबों के आसपास ढूँढ़ो। अगर तुम्हें बाहर कोई घोंघा या खोल ना मिले तो अपने दोस्तों या रिश्तेदारों से कुछ समुद्री घोंघों या ताज़े पानी के घोंघों के खोल इकट्ठे कर लो। खोलों की आकृतियों और आकारों के हिसाब से उनके समूह बना लो।

ज़मीनी घोंघे

ताज़े पानी के घोंघे

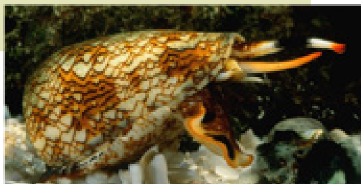

समुद्री घोंघे

प्रतियोगिता

अपनी फील्ड डायरी से अपने नोट्स और ड्राइंग हमें chakmak@eklavya.in पर भेजो, और एक किताब जीतने का मौका पाओ। अगर तुम किसी घोंघे या उसके खोल की पहचान करवाना चाहो तो हमें ज़रूर लिखना।

क्या तुमने यह घोंघा देखा है?

'विशाल अफ्रीकन ज़मीनी घोंघा' एक अतिक्रमक है। वैसे तो यह पूर्वी अफ्रीका में पाया जाता है लेकिन अब भारत के भी कई इलाकों में पाया जाने लगा है। यह 10 सेंटीमीटर चौड़ा होता है, और बगीचे में पाए जाने वाले बड़े घोंघों में से एक है। कुछ बगीचों में तुम इन्हें बड़ी संख्या में भी देख सकते हो। और ये बगीचे के पौधों को भारी नुकसान पहुँचा सकते हैं। इनसे बीमारी भी हो सकती है। इसलिए इन्हें छूना बिलकुल भी मत।

अनुवाद: मुदित श्रीवास्तव

कहानियों में गणित

चन्दा, शतरंज और चावल के दाने

आलोका कन्हरे

इस बार एक कहानी से शुरू करते हैं। यह कहानी है चन्दा की। चन्दा को गणित और गणित के सवालों को हल करना बहुत पसन्द था। उसे जानवरों, खास तौर से हाथियों की देखरेख करना भी बहुत अच्छा लगता था। वह महल में राजा के हाथियों की देखरेख का काम करती थी।

एक बार चन्दा के गाँव में अकाल पड़ा। गाँव के सभी लोगों की फसलें बरबाद हो गईं। उनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं बचा। जब लोग भूख से तड़प रहे थे तब भी राजा के गोदाम चावल से भरे पड़े थे। लेकिन वह किसी की मदद नहीं कर रहा था।

उसी समय राजा की प्रिय हथिनी मीशा बीमार हो गई। राजा को मीशा की बहुत चिन्ता हो रही थी। उसने चन्दा को बुलाया और मीशा की देखरेख करने को कहा। उसने कहा, “अगर मीशा ठीक हो जाती है तो तुम जो माँगोगी मैं तुम्हें दूँगा।” चन्दा ने मीशा का बहुत अच्छे-से खयाल रखा। और मीशा ठीक हो गई। राजा को अपना वादा याद था। उसने चन्दा से कहा कि वो जो चाहे माँग ले। चन्दा ने चारों ओर देखा। उसे एक शतरंज दिखाई दिया।

चन्दा: “मुझे चावल चाहिए।”

राजा: “कितना?”

चन्दा: (शतरंज की ओर इशारा करते हुए) “पहले चौकोर के लिए चावल के दो दाने, दूसरे चौकोर के लिए 4 दाने, तीसरे चौकोर के लिए 8 दाने और इसी तरह आगे भी।”

राजा आश्चर्य में पड़ गया। उसने सोचा, “चन्दा कुछ भी माँग सकती थी। कितनी बेवकूफ है वो कि सिर्फ चावल के कुछ दाने माँग रही है।”

राजा ने अपने सैनिकों को चावल के दानों की गिनती शुरू करने का आदेश दिया।

1 चौकोर - 2 दाने

2 चौकोर - 4 दाने

3 चौकोर - 8 दाने

4 चौकोर - 16 दाने

5 चौकोर - 32 दाने

.....

8 चौकोर - 256 दाने

अब सैनिक ऊबे हुए लग रहे थे। वे जानते थे कि अब उन्हें 512 दाने गिनने हैं। तभी चन्दा उनके बचाव में आई और बोली, “256 दाने लगभग 1 चम्मच चावल के दानों के बराबर होते

हैं। तो अब आप गिनने के लिए चम्मच का इस्तेमाल कर लो।”

सैनिकों ने फिर से गिनती शुरू की।

9 चौकोर – 2 चम्मच

10 चौकोर – 4 चम्मच

11 चौकोर – 8 चम्मच

....

16 चौकोर – 256 चम्मच

अब तक सैनिकों को अभ्यास हो गया था। उन्होंने अनुमान लगा लिया था कि 256 चम्मच दाने लगभग 1 बरतन चावल के दानों के बराबर होंगे। तो, अब उन्होंने बरतन का इस्तेमाल कर गिनना शुरू किया।

17 चौकोर – 2 बरतन

18 चौकोर – 4 बरतन

19 चौकोर – 8 बरतन

......

24 चौकोर – 256 बरतन

चावल के 256 बरतन लगभग चावल से भरी एक हाथ-गाड़ी के बराबर होते हैं...

32 चौकोर – 256 हाथ-गाड़ियाँ

40 चौकोर के आते-आते राजा के कुछ गोदाम खाली हो गए। अभी तो 24 चौकोर और बाकी थे।

राजा को चिन्ता होने लगी। उसने चन्दा से कहा, “माफ करना। मुझे नहीं लगता कि मैं तुम्हें वो दे पाऊँगा, जो तुमने माँगा था। तुम कुछ और माँग लो।” चन्दा बोली, “कृपया अपने राज्य के लोगों की मदद कीजिए। उन्हें उतना चावल दे दीजिए, जितना उन्हें चाहिए।” राजा को पूरे चावल हार जाने की इतनी चिन्ता थी कि वह तुरन्त ही चन्दा की बात मान गया। और इस तरह राज्य के हर व्यक्ति को कम से कम उतना चावल मिल गया, जितने की उनको जरूरत थी।

अब सवाल ये है कि चन्दा ने यही संख्याएँ क्यों चुनीं? क्या खास है इन संख्याओं में?

अगले अंक में मैं इसका जवाब दूँगी।

गणित है मज़ेदार!

इन पन्नों में हम कोशिश करेंगे कि आपको ऐसी चीज़ें दें जिनको हल करने में मज़ा आए। ये पन्ने खास उन लोगों के लिए हैं जिन्हें गणित से डर लगता है।

प्लीज़ अब खोल दो स्कूल

गगन
आठवीं
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय
छम्यार, मण्डी, हिमाचल प्रदेश

क्या दिन आ गए हैं
आइसक्रीम का मौसम है
पर खा नहीं पा रहे हैं
रास्ता वहीं बिछा है
पर कहीं जा नहीं पा रहे हैं
खेलने का मन है बहुत
पर बाहर जा नहीं पा रहे हैं
दोस्तों से मिले हो गए छह महीने
गर्मी के मारे घर बैठे आ रहे हैं पसीने
ना कुल्फी, ना आइसक्रीम, ना चोकोबार
और ना मेरे साथ, मेरे सहपाठी-यार
प्लीज़ अब खोल दो स्कूल
हम नहीं तोड़ेंगे सोशियल डिस्टेंसिंग के रूल।

चित्र: ताप्ती कडवे, तीसरी, आनन्द निकेतन स्कूल, वर्धा, महाराष्ट्र

चित्र: जाह्नवी कुमारी
किलकारी बाल भवन, पटना, बिहार

चूहे की बात

दिव्यश्याम, पाँच वर्ष, किड जोन प्री स्कूल, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

मेरे घर में बहुत सारे चूहे हैं। वे कपड़े और सामान काट देते हैं। मेरे पापा उनसे बहुत परेशान हो गए हैं। हम लोग चूहेदानी और रैटपैड लगाकर उन्हें पकड़ते हैं।

एक दिन मैं भण्डार में छुपकर खेल रहा था। भण्डार में बहुत सारे डिब्बे रखे थे। मैंने एक डिब्बे से बादाम निकालकर खाया। बड़ा मज़ा आया। चूहों को भी मज़ा आता होगा। तो हम उन्हें क्यों पकड़ते हैं?

चिड़िया से दोस्ती

खेमा अहिरवार, तीसरी, शासकीय प्राथमिक शाला, धर्मश्री, सागर, मध्य प्रदेश

मेरे आँगन में एक पेड़ था। उस पेड़ पर एक चिड़िया रहती थी। मैंने उस चिड़िया का नाम रानी रख दिया। रानी चिड़िया रोज़ मेरे आँगन के दाने खाती थी। और अपने बच्चों को खाना खाने के लिए देती थी। वह चिड़िया मुझको अच्छी लगने लगी। चिड़िया से मैंने दोस्ती कर ली। चिड़िया मुझसे रोज़ बातें करती थीं। मैं भी उससे बातें करती थी। हम दोनों एक-दूसरे की भाषा समझने लगे हैं।

गर्मी की छुट्टियाँ

कृति पाण्डेय
छठवीं, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

मैं इस गर्मी की छुट्टी में गोरखपुर से बनारस आई। और बनारस से मुगल सराय गई। मैं वहाँ 17 दिन रुकी। वहाँ मैं और अर्चित बहुत खेले, टीवी देखे, फोन चलाए, मस्ती की और कॉमिक्स पढ़े। हमने वहाँ पर कई सारी ड्राइंग्स भी बनाईं। हमने बहुत सारे आम और जामुन खाए। हमने वहाँ पर *चेन्नई एक्सप्रेस* मूवी भी देखी।

10 जून को हम वापिस बनारस आए। मुझे अब बनारस आने में मज़ा नहीं आ रहा था। क्योंकि मैं यहाँ पर बहुत बोर हो रही हूँ। यहाँ पर कोई खेलने के लिए नहीं है।

मैं अब इतनी बोर हो रही हूँ कि मैं आज दिन में सो गई। दो दिन तक मुझे लगा कि मैं नॉर्मली बोर हो रही हूँ। पर जब मैं आज दिन में सो गई तो यह साबित हो गया कि मैं सच में बोर हो रही हूँ। कोरोना की वजह से मैं इस साल कहीं घूम नहीं पाई।

चित्र: कौशल कौशिक, छह वर्ष, भोपाल, मध्य प्रदेश

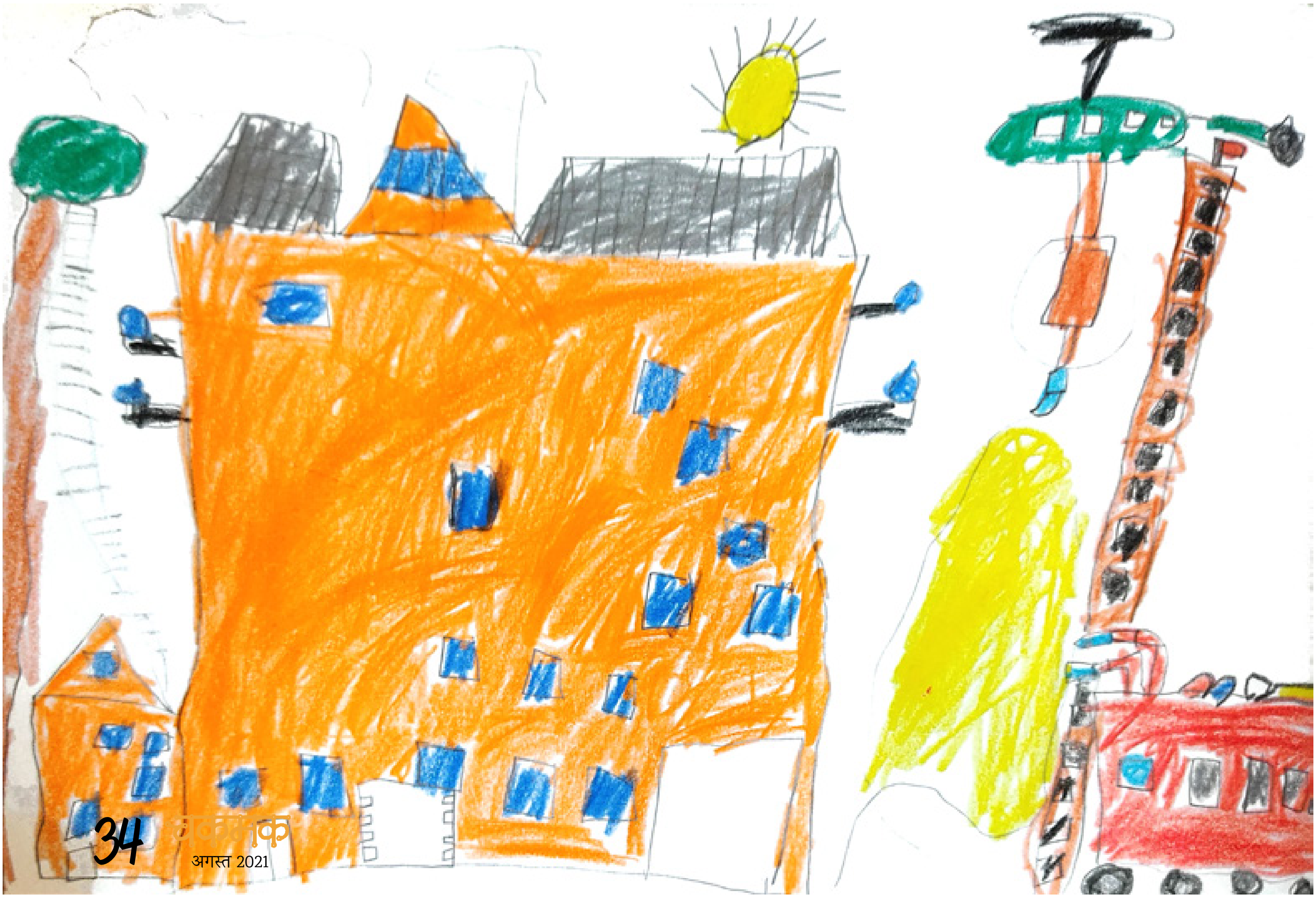

चित्र: विनायक कंसल, आठवीं, सेंट पॉल स्कूल, दिल्ली

रणथम्बौर का बाघ

अरहान अहमद, चौथी, शिव नाडर स्कूल, नोएडा, उत्तर प्रदेश

शाम के 5 बज रहे थे। मैं अपने माँ और पापा के साथ सवाई माधोपुर के स्टेशन पे उतर गया। मैं बहुत खुश हुआ जब मैंने देखा कि हर जगह बाघ और बाघिन के चित्र बने थे। हम वहाँ से एक गाड़ी लेकर निकल गए।

हमारा होटल जंगल में एक पहाड़ी पर था। वह एक पुराना किला था। वहाँ से एक बहुत अच्छा नज़ारा दिखता था। हमें वहाँ पे साम्भर और हिरन दिखे थे। फिर हम खाना खाने गए तो मैंने चिकन खाया। मुझे बहुत तेज़ मिर्च लगी तो मैंने बहुत सारा पानी पिया। मेरे पापा को तो बहुत मज़ा आया। फिर हमने थोड़ी बातें करीं और सो गए। पर मैं बहुत उतावला हो रहा था क्योंकि हम सुबह एक जंगल की सैर पे निकलने वाले थे। रात को बीच में मैंने देखा तो मुझे ऐसा लग रहा था कि कोई खिड़की के पास खड़ा है। इत्तिफाक से तभी मेरे पापा का फोन बजा और वो उठ गए। उन्होंने लाइट जलाई तो मुझे दिखा कि वो हमारे सामान की परछाई थी।

धीमे-धीमे सूरज निकल रहा था और हम जल्दी-जल्दी अपनी जंगल सफारी के लिए तैयार हो रहे थे। हमारी जिप्सी आते ही हम उस पे सवार हो निकल पड़े। रास्ते में हमें मोर की आवाज़ आ रही थी। हवा बहुत ठण्डी थी। और हमने हलके गरम कपड़े पहने थे। जब हम वहाँ पहुँचे तो मैंने एक सूचना बोर्ड देखा। उस पे लिखा था कि गाड़ी में खड़े ना हों, शोर ना करें और कचरा ना फेंके। वन में मोर और हिरन थे। अपने पूरे परिवार के साथ उस घने जंगल में मज़ा आ रहा था। तरह-तरह के पक्षियों की आवाज़ के बीच हमारी गाड़ी बाघ की खोज में चली जा रही थी।

अचानक पेड़ों के बीच लेटा हुआ एक बाघ हमें दिख गया। मैं चकित रह गया और बहुत देर तक उसे देखता रहा। मैं वो दृश्य कभी नहीं भूल सकता। मैं और भी ऐसी रोमांचक जंगल सफारी पर जाना चाहता हूँ।

प्यार वाली कहानी

अनाम, दिल्ली

पहले मैं गुजरात में रहती थी। एक दिन मेरे भाई के दोस्त गाँव से आए। मेहमान आए तो मैं घबरा गई क्योंकि मुझे खाना बनाना सही से नहीं आता था। मैंने दाल-चावल, अण्डा व रोटी बनाई। रोटी गोल नहीं बनी थी। जब मैं सबको खाना दे रही थी तो भाई का एक दोस्त बार-बार मुझे देख रहा था। उसको खाना देते हुए मेरे हाथ काँप रहे थे। मैं कभी अपना दुपट्टा सम्भाल रही थी, तो कभी खाना।

जब वो बार-बार मुझे देख रहा था तो मुझे अन्दर ही अन्दर बहुत गुस्सा आ रहा था। फिर वो मुझे देखकर मुस्कराने लगा और मेरे खाने की भी तारीफ करने लगा। उस दिन बाकी दोस्त तो सब चले गए पर वो हमारे साथ गुजरात में ही रुक गया।

वो हमेशा मुझसे बात करने का मौका ढूँढ़ता। पर मैं उससे बात नहीं करती थी। एक दिन वो बोला कि चलो पार्क में चलते हैं। मैंने कहा थोड़ी देर के लिए चलूँगी। मुझे बहुत डर लग रहा था। फिर उसने हाथ में गुलाब का फूल लेकर मुझे अपने दिल की बात कही। और बोला कि कल सुबह अपना जवाब मुझे बता देना।

चित्र: ममिलियापल्ली उथाया, लर्निंग बाय लोकल, दिल्ली

दूसरे दिन वह मुझसे सवाल का जवाब देने के लिए कहने लगा। मैंने कुछ नहीं कहा। फिर मैंने कई दिनों तक सोचने के बाद उसको हाँ बोल दिया। हमारी यह प्यार वाली कहानी कुछ दिनों तक चलती रही। फिर हम बरेली आ गए। उसने मुझे अपना नम्बर दिया। फिर हम फोन पर बात करने लगे।

एक दिन उसका भाई हमारे घर आया। मैंने उससे उसके बारे में पूछा कि वो कोई गलत शौक तो नहीं करता है। पर उसने अपने भाई को पता नहीं क्या कहा कि उसने मुझे फोन करके बहुत गुस्सा किया और मेरी बात भी नहीं सुनी। और बात करना बन्द कर दिया। मैं अब भी उसे बहुत याद करती हूँ।

चित्र: देबोप्रोतिम हजारिका, सातवीं, देओदिया अति सीनियर बेसिक स्कूल, मजूली, असम

मेरा पन्ना

माथापच्ची

6. इस चित्र में कुल कितनी गेंदें हैं?

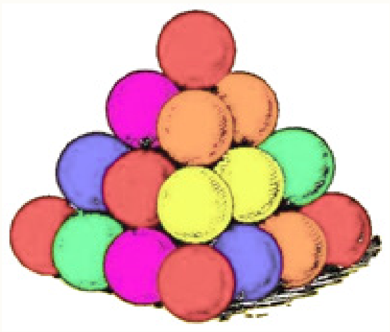

7. चार बार 9 और एक बार 1 को इस्तेमाल करके 100 उत्तर लाना है। कैसे करोगे? ध्यान रहे तुम जोड़, घटाव, गुणा या भाग में से किसी एक चिन्ह का इस्तेमाल कर सकते हो।

8. एक बुज़ुर्ग व्यक्ति की ओर इशारा करते हुआ कुणाल ने कहा, “उनका बेटा मेरे बेटे का चाचा है” बुज़ुर्ग व्यक्ति का कुणाल से क्या रिश्ता हुआ?

9. दोनों में से किस चित्र में वर्गों की संख्या ज़्यादा है?

पहला　　　　दूसरा

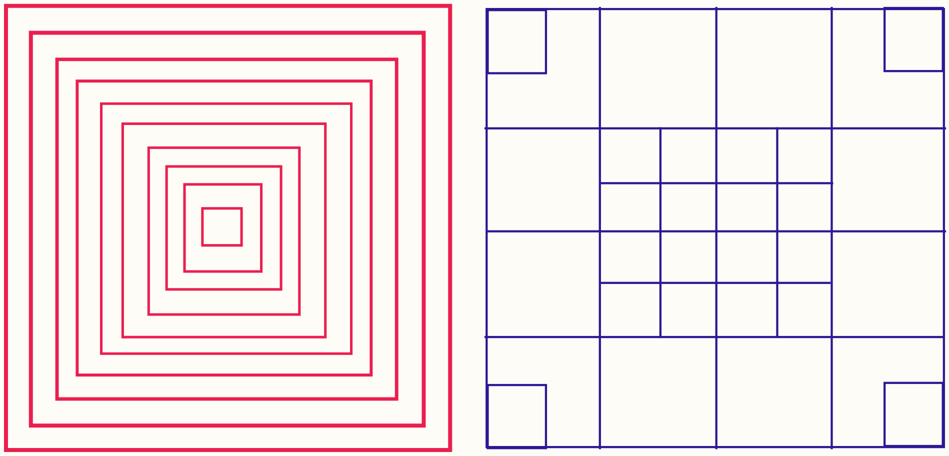

10. क्या तुम बुधवार, शुक्रवार और रविवार का नाम लिए बिना तीन लगातार आने वाले दिनों के नाम ले सकते हो?

फटाफट बताओ

एक लाठी की अजब कहानी, उसके भीतर मीठा पानी।
उस लाठी में गाँठे-दस, जो चाहे वो पीले रस।

(गन्ना)

एक पैर है, काली धोती, सर्दी में हरदम है सोती।
सावन में है रोती रहती, गर्मी में छाया है होती।

(छतरी)

चार खड़े, दो अड़े, दो पड़े,
एक-एक के मुँह में दो-दो पड़े।

(चारपाई)

मेरी पूँछ पर हरियाली, तन है मगर सफेद।
खाने के काम आती, अब बोलो मेरा भेद।

(मूली)

चार खम्भे चलते जाएँ, सबसे आगे अजगर।
पीछे सबके साँप चल रहा, फिर भी तनिक नहीं डर।

(गाड़ी)

तुम भी जानो

24 हज़ार साल बाद ज़िन्दा हुआ एक सूक्ष्मजीव

हाल ही में वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीव को खोज निकाला है जो चौबीस हज़ार साल तक बर्फ में दबा रहा। दिखने में यह जीव किसी इल्ली की तरह है। इसे *डेलॉइड रोटिफर* कहा जाता है। हैरानी की बात यह है कि चौबीस हज़ार साल तक साइबीरिया की बर्फ में जमा यह सूक्ष्मजीव जब बर्फ से बाहर निकाला गया, तो वह खाना खाने में सक्षम था। प्रजनन करने में भी सक्षम था। बिलकुल किसी विज्ञानी फंतासी की कहानी जैसे!

माल वाहक जहाज़ का एक भयानक हादसा

15 मई को एक माल वाहक जहाज़ गुजरात के बन्दरगाह से सिंगापुर जाने के लिए रवाना हुआ। इस जहाज़ में कई तरह के रसायन और कॉस्मेटिक का सामान था। साथ ही 25 टन नाइट्रिक एसिड भी था। 21 मई को यह जहाज श्रीलंका से गुज़र रहा था। इस दौरान इसमें आग लगने की खबर आई। नाइट्रिक एसिड अपने आप तो नहीं जलता। लेकिन किन्हीं अन्य धातुओं और रसायनों के सम्पर्क में आने पर यह विस्फोट कर सकता है। इस आग ने पूरे जहाज को अपनी चपेट में ले लिया। आग पर तो कुछ दिनों में काबू पा लिया गया। लेकिन जहाज को डूबने से नहीं बचाया जा सका। इस दुर्घटना की वजह से श्रीलंका के तटीय इलाकों में रसायन और जले हुए प्लास्टिक के अवशेष बिखर गए। और मछुआरों को भी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। यह श्रीलंका में अब तक का सबसे भयानक समुद्री हादसा माना गया है।

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
Cuttack

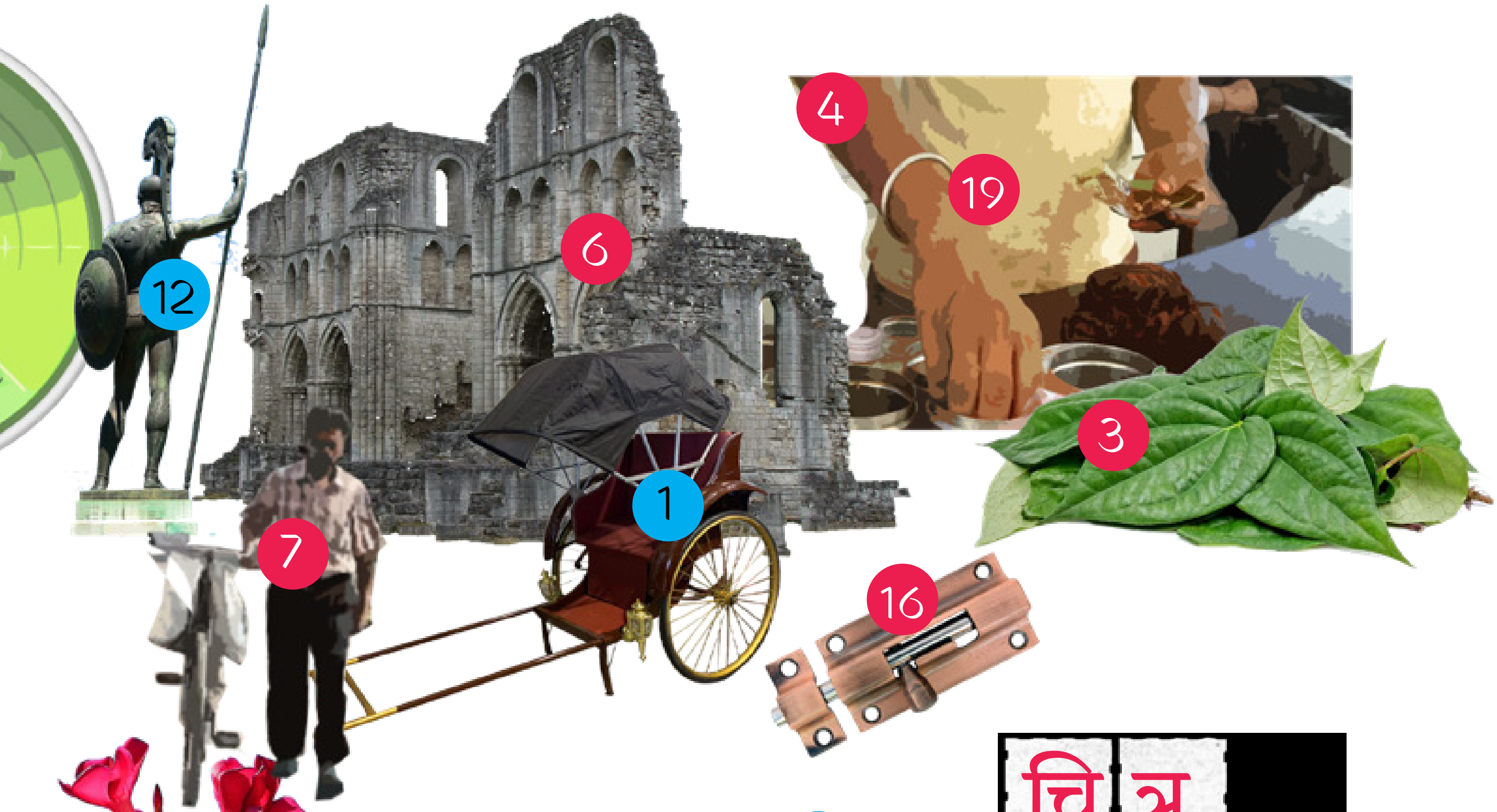

चित्र पहेली

बाएँ से दाएँ

ऊपर से नीचे

दिए हुए बॉक्स में 1 से 9 तक के अंक भरने हैं। आसान लग रहा है न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने हैं। अंक भरते समय तुम्हें यह ध्यान रखना है कि 1 से 9 तक के अंक एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराए न जाएँ। साथ ही साथ, गुलाबी लाइन से बने बॉक्स में तुमको नौ डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि हर गुलाबी बॉक्स में भी 1 से 9 तक के अंक दुबारा न आएँ। कठिन भी नहीं है, करके तो देखो। जवाब तुमको अगले अंक में मिल जाएगा।

सुडोकू 45

		3	6			2	5	7
		6	5					
				4	3	9	6	1
4		1	7	6			3	
2			9		4	7	1	
	6	7		8	2	4	9	5
	8						2	
	3				9	1	7	4
	1			2			8	

जवाब माथापच्ची

1. 35

2. दोनों की माप समान है।

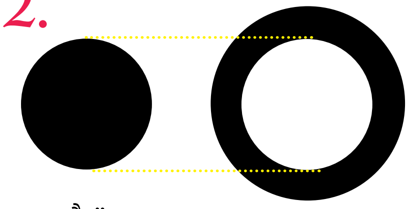

3. 11, 13 और तीसरी संख्या 9 को हम उल्टा कर सकते हैं तो वो 6 हो जाएगा, और 11 + 13 + 6 = 30

4.

ब्र	को	चि	ना	ब	चं	गं	म	क्षि
ह	सी	सो	सिं	धु	ब	ड	घ	प्रा
म	हा	न	दी	अ	ल	क	नं	दा
पु	स	र्म	बे	त	वा	व्या	दा	धा
त्र	त	दा	गो	म	ती	स	य	घ
ती	लु	कृ	दा	मो	द	र	मु	रा
स	ज	प्या	व	ता	ल	यू	ना	गा
ता	का	वे	री	ट	रा	म	गं	गा
सा	ब	र	म	ती	वी	झे	ल	म

5. "किले के भीतर ख़ज़ाना है।"

6. कुल 30

नीचे से ऊपर - पहला लेवल - 4X4 = 16

दूसरा लेवल - 3X3 = 9

तीसरा लेवल - 2X2 = 4

चौथा लेवल - = 1

16+9+4+1 = 30

7. 199-99 = 100

8. बुज़ुर्ग व्यक्ति कुणाल के पिता हैं।

9. दूसरे चित्र में

10. हाँ - कल, आज और कल

जुलाई की चित्रपहेली का जवाब

	1 ना		2 ना		3 जो		4 अं	
5 ग	ल	6 फ	झा		7 क	रं	जी	
म		फूं		8 सि	र		9 र	स
छा		द		ता		10 दू		
	11 प		12 झा	रा		13 ध	नि	14 या
	15 पी	प	ल			वा		क
16 छा	ता		17 र	18 स	म	ला	19 ई	
ग		20 घ		मो			21 ख	त
22 ल	क	ड़ी		23 सा	बु	न		

सुडोकू-44 का जवाब

9	4	6	8	2	1	7	3	5
3	1	7	5	4	9	8	6	2
5	8	2	7	6	3	1	4	9
8	5	3	9	1	2	4	7	6
2	6	9	4	3	7	5	8	1
4	7	1	6	8	5	9	2	3
1	2	8	3	5	4	6	9	7
7	3	4	1	9	6	2	5	8
6	9	5	2	7	8	3	1	4

...मैंने एकलव्य की इस पत्रिका के लिए चकमक नाम सुझाया। ...चकमक की चिंगारी तो क्षण भर में ही बुझ जाती है। पर इस चिंगारी को तमाम लोगों ने एक लम्बे अर्से तक ज़िन्दा रखा है। चकमक पास हो तो तुम दुबारा चिंगारी पैदा कर सकते हो। अँधेरा चाहे कितना ही गहरा हो फिर भी चकमक से तुम्हें मंज़िल तक पहुँचने में मदद ज़रूर मिलेगी।

पद्मश्री अरविन्द गुप्ता, वैज्ञानिक व टॉयमेकर

चकमक सदस्यता (सब्सक्रिप्शन) खुद के लिए लें, बच्चों के लिए लें, जन्मदिन के उपहार में दें, स्कूलों, पुस्तकालयों, बच्चों के साथ काम कर रही संस्थाओं को दें...

दोस्तो,

पिछले कुछ समय से कुछ पाठकों से *चकमक* की प्रतियाँ ना मिलने या देर से मिलने की शिकायतें आ रही थीं। मालूम होता है कि साधारण डाक से सभी पाठकों को *चकमक* की प्रति समय से नहीं मिल पा रही है। इसलिए जुलाई अंक से नए सदस्यों को *चकमक* **रजिस्टर्ड डाक** द्वारा भेजी जाएगी। इसके चलते *चकमक* की सदस्यता शुल्क की नई दरें इस प्रकार होंगी:

वार्षिक : ₹ 800

दो साल : ₹ 1450

तीन साल : ₹ 2250

यदि पुराने पाठक भी (जिन्हें *चकमक* नहीं मिल रही हो या समय पर उन तक नहीं पहुँच रही हो) रजिस्टर्ड डाक से *चकमक* मँगवाना चाहें तो वे chakmak@eklvaya.in पर ईमेल करें अथवा 9074767948 पर सम्पर्क करें।

नोट: रजिस्टर्ड पोस्ट की कीमतों में बदलाव होने पर सदस्यता दरों में भी बदलाव सम्भव है।

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2021-23

तुम भी बनाओ

कनक शशि

इस चित्र को बनाने में रसोई में इस्तेमाल होने वाली चीज़ों और कचरे का इस्तेमाल हुआ है। अगर तुम भी ऐसा कुछ बनाते हो, तो हमें ज़रूर भेजना।

प्रकाशक एवं मुद्रक राजेश खिंदरी द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य फाउंडेशन, जाटखेड़ी, फॉर्च्यून कस्तूरी के पास, भोपाल, मध्य प्रदेश 462 026 से प्रकाशित एवं आर के सिक्युप्रिन्ट प्रा लि प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इण्डस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: विनता विश्वनाथन